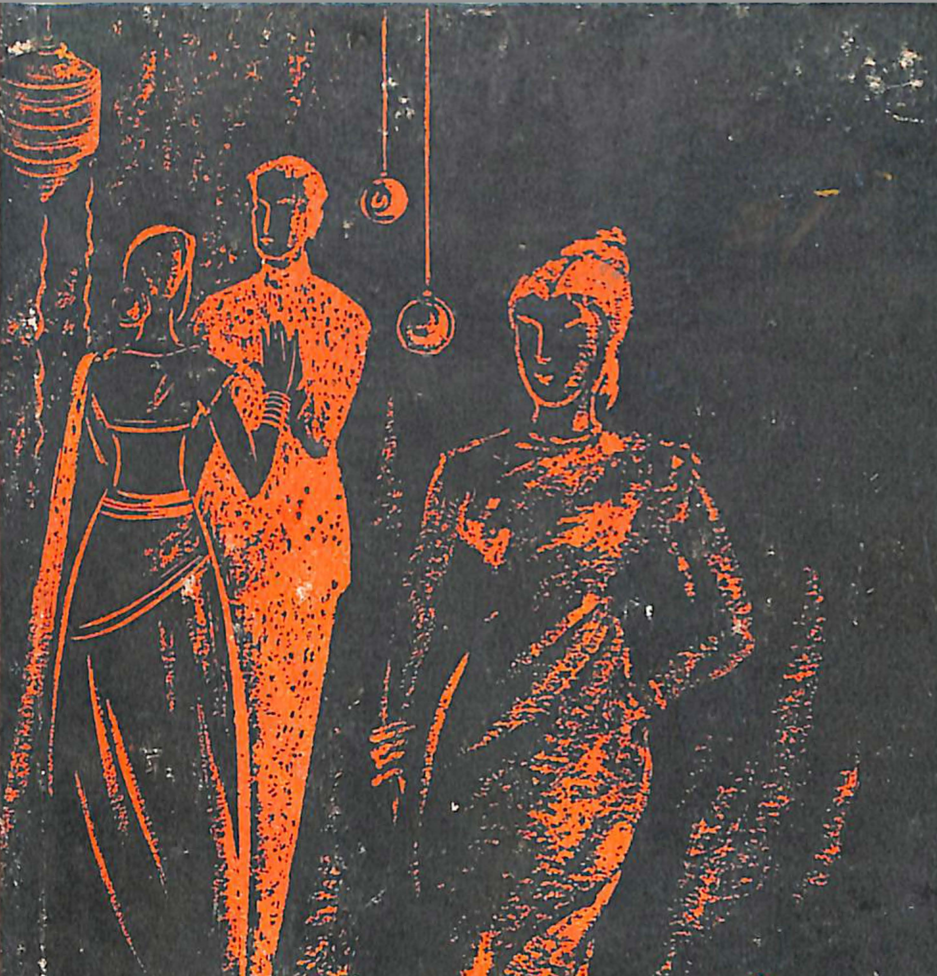

स्वयंवर

विनोदचन्द्र पाण्डेय

H
813.31
P 192 S

H
813.31
P192S

अनुराग प्रकाशन, गोरखपुर

स्वयंवर

[कहानी-संग्रह]

विनोदचन्द्र पाण्डेय

अनुराग प्रकाशन
गोरखपुर

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
गोरखपुर

प्रमुख विक्रेता
विश्वविद्यालय प्रकाशन
नखास चौक, गोरखपुर

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 46565
Date 5.2.74

(c) अनुराग प्रकाशन, १९५८

मूल्य—सवा दो रुपया

H
813.31
P192 S

Library IIAS, Shimla
H 813.31 P 192 S
00046565

मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) ५३३३—१५

क्रम

१. एतबार	...	१
२. मीना	...	१४
३. उमर	...	३४
४. निराशा	...	३९
५. स्वयंवर	...	४३
६. दूध की मूँछें	...	४६
७. मजबूरी	...	४९
८. म्युजियम	...	५३
९. एडमिशन	...	६०
१०. सीता	...	६५
११. मुर्दावाद	...	८५

यह कृति

कौतुक से कहानी कहना-सुनना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, पर कहानी-कला के लिए 'तो फिर क्या हुआ' से अधिक महत्त्वपूर्ण है रस अथवा मार्मिकता, जिसका प्रधान साधन है चरित्र-सृष्टि। आधुनिक दृष्टि से व्यक्तियों के चरित्र और कार्य बहुत कुछ समाज-सापेक्ष हैं, अतएव चरित्र-निरूपण में 'सामाजिक आलोचना' अनिवार्य है।

स्वयंवर के पात्र काल्पनिक होते हुए भी आपका हृदय एक गहरे यथार्थ से स्पर्श करेंगे और हमारे मध्य-वर्ग की टूटती कड़ियों की ओर आपका ध्यान एक नई दृष्टि से आकृष्ट करेंगे।

—प्रकाशक

एतबार

आज मैं कहीं नहीं गया। यह अजीब बात थी। साइकिल उठा कर सुदेश के घर जा सकता था या सुदेश मेरे घर आया होता तो हम दोनों कहीं चले जाते। मैंने 'कहीं' कहा पर कहीं हम दोनों के लिये हमेशा सिविल लाइन्स ही होती है। कई साल पहले मैंने एक डायरी खरीदी थी। एक दो महीने मैंने एक ही बात को विभिन्न ढंग से लिखने का प्रयत्न जारी रखा, फिर उस रोज के प्रहसन से भी जी भर गया। सुदेश मेरी काफी हँसी बनाता है, कि मैंने उस डायरी पर व्यक्तिगत, गोपनीय और ऐसे ही अन्य भयानक शब्द लिख दिये थे। सुदेश से ही उसे छिपा कर रखा, हाँलाकि कोई अच्छा बन पड़ा वाक्य तो उसे बताना ही होता था।

सुदेश को मैं इतने दिन से जानता हूँ कि उससे कोई बचाव नहीं। हम लोगों के बीच अब कोई बड़ी बात नहीं हो सकती; न हम अब एक दूसरे से एकाएक हमेशा-हमेशा के लिए बिछुड़ सकते हैं; यहाँ तक बात सड़ चुकी है, कि हम एक दूसरे से ज्यादा झुँझलाहट भी नहीं बरत पाते हैं। मेरे ख्याल में ऐसी जान-पहचान हम लोगों की आत्मा और आन्तरिक प्रगति के लिये अच्छी नहीं। हर एक मनुष्य के पास कुछ जीवन बिलकुल निजी होना चाहिये। उसके कुछ ऐसे अनुभव होने चाहियें जो सिर्फ उसी के हों जिन्हें वह अप्रकाशित रखने पर बाध्य हो। किसी भी कारण से—भाषा की प्रकाशित करने में असमर्थता से, अथवा परिस्थिति विशेष से।

सुदेश से मैं अक्सर कहता हूँ कि तुम शादी कर डालो। उसका जवाब हमेशा होता है "छोड़ो यार, तुम क्यों नहीं करते? तुम्हें तो ज्यादा करने को है।" मेरे लिये शादी की ज्यादा उपयुक्तता से उसका इशारा है कि उसके साथ उसकी माँ, दो छोटे भाई और बहिन हैं—जहाँ मेरे साथ सिर्फ मेरी माँ, एक छोटा भाई और एक बहिन है। सुदेश उन व्यवहारी आदमियों में से

है जिनका हृदय बहुत सीधा सादा होता है। ऐसे लोग किसी मोटे, साधारण से सत्य को पकड़ लेते हैं और बस। उनके हृदय में बारीक शंकाएँ कभी होती ही नहीं, कितना ही समझाओ।

हम लोग कभी साथ सिनेमा देख कर लौटते हैं। सुदेश सिनेमा में सुने किसी भी गाने को सीटी में आसानी से बजाता रहता है। साफ जाहिर है कि सुदेश को स्वरज्ञान आसानी से हो सकता है, वह संगीत आसानी से सीख सकता है। पर मेरे कितना भी इस सत्य को प्रदर्शित करने पर उसने कभी गाने सुनने या सीखने की चेष्टा नहीं की। "सब चक्कर है, हमें कुछ नहीं आना जाना।" इसे हम कोई संतोषी स्वभाव कह आदर नहीं कर सकते; यह तो आत्मा का आलस्य और भीरुता है।

इसी संबंध में मुझे एक और उदाहरण सूझता है।

शहर के इसी हिस्से में एक डाक्टर भगत रहते हैं। ये बर्मा से आए हैं और पहले मिलिटरी में थे। कद में छोटे पर ठोस भरे हैं। मैं शुरू में ही कह दूँ कि मुझे डाक्टर भगत पसंद नहीं। अपनी इस भावना को मैं शायद समझा न पाऊँ। डाक्टर भगत बड़े छोटे से यार कह कर, हँस के बोलते हैं। उनका यह आत्मीयता का प्रदर्शन मुझे खास तौर पर खटकता है। सब जानते हैं कि किसी से भी डाक्टर भगत को दिलचस्पी नहीं—उनकी प्रैक्टिस नई है और वह अपने आप को सर्वप्रिय करने का प्रयत्न करते हैं। मुझे चिढ़ इस बात से होती है कि यह होते हुए भी उनकी मजाक सफल होती है, लोग डाक्टर भगत को दिलचस्प पाते हैं। डाक्टर भगत सहज ही दूसरों के साथ एक बनावटी स्तर ढूँढ़ लेते —जहाँ दोनों जो एक दूसरे को कोड़ी न दें, एक ठिठोली का मजा ले सकें।

उन्हीं दिनों डाक्टर भगत आकर बसे थे। हम लोगों को उनके बारे में कौतूहल था। मैं बरामदे में चाय पीता बैठा सर उठा कर देख लेता था, जब उनकी छोटी सी मोटर, एक बिगड़ी मुर्गी की तरह टर्राती सामने सड़क से गुजरती। उनकी मोटर का गुजरा-गुजराया चाकलेट रंग था—कोई भूला भुलाया ऑस्टिन का मॉडेल।

भारतवर्ष में आजकल पड़ोसी-धर्म असम्भव है। रिश्तेदारी में आप आ जा सकते हैं। अथवा अपने नौकरी में सहयोगी के घर बाहर वाली बैठक तक मिल

आ सकते हैं। बाकी सब मिलना-मिलाना बेशऊर है। डाक्टर भगत पंजाबी थे, या कम-से-कम पश्चिमी उत्तर प्रदेश के। अगर हमें यह मालूम भी हो जाता कि वह भी खत्री हैं सुदेश की तरह, तब भी उनका पश्चिमी खत्री होना शायद समस्या को बनाए ही रखता।

हम लोगों को धीरे-धीरे मालूम हुआ, कि उनकी बीबी उनकी दूसरी बीबी हैं। श्रीमती भगत का नाम डाक्टर साहब एकदम प्रगट कर देते थे। उनकी बातों में इतने सारे उदाहरण उनके और शीला की मधुर तकरार के दिये जाते थे कि यह न जानना असम्भव था। शीला जी को देख कर कहा जा सकता था कि वह शौकीन तबियत की हैं, और सुन्दर मानी जा सकती हैं। कुछ उनके स्वतन्त्रता प्रदर्शन से स्पष्ट था कि वह डाक्टर से ज्यादा प्रतिष्ठित खानदान से आती थीं उनके शरीर में भरे गहने डाक्टर की कमाई नहीं हो सकते थे।

यह भी मालूम पड़ा कि पप्पू—एक मोटा, भौंदू-सा दीखता लड़का शीला जी की सन्तान हैं। पप्पू में कुछ भी असाधारण नहीं था। हाँ मुझे यह जरूर नागवार गुजरता था कि मेरा सदा का जुकाम सदा डाक्टर भगत द्वारा प्रिय पप्पू के जुकाम से तुलना पाए। मुझे अपने दुबले होने पर नाज नहीं—न मैं अपने आप को मेधावी गिनता हूँ—पर पप्पू !

फिर मालूम पड़ा कि शान्ती डाक्टर भगत की पहली पत्नी से लड़की है। शान्ती पप्पू से बिलकुल विपरीत थी भी। दुबली, बीमार सी लड़की जो अकेली उनके घर में चटकदार कपड़े नहीं पहिनती थी। मेरी छोटी बहन ने बतलाया कि शान्ती कालेज में चुप रहती है, अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में खोई हुई सी।

मैं सवेरे बरामदे में पड़े तख्त पर आ बैठता हूँ। मेरी चाय भी मुझे वहीं देदी जाती है—मैं वहाँ बैठकर अखबार पढ़ा करता हूँ। अखबार में पढ़ी खबर मुझे अक्सर जोश दिला देती—कुछ भी हो बढ़ते भाव, श्री नेहरू की यात्रा, अथवा अणु युद्ध। मैं शीघ्र ही अपनी इन सब विषयों पर अमूल्य धारणा बना लेता हूँ और उसे जगत पर व्यक्त करने को अधीर भी हो जाता हूँ। ऐसी स्थिति में गोपाल बाबू ही मेरा निर्वाण करते हैं।

गोपाल बाबू मेरी माँ के शब्दों में 'वह पुराना खूसट !' है। माँ को मेरा गोपाल बाबू से सवेरे आ गप्पें लगाना जरा बुरा लगता है। गोपाल बाबू का

पूरा नाम गोपाल बनर्जी है, वह उन बंगालियों में से हैं जो कई पुश्तों से उत्तर प्रदेश में बसे हैं, जिन्हें कलकत्ता की शायद चार सड़कों के भी नाम नहीं ज्ञात पर जो इस पर भी अपने बंगाली होने का तुर्रा खास निभाते हैं। मैंने रविन्द्रनाथ ठाकुर अनुवाद में तो पढ़ा है पर मुझे गोपाल बाबू से टैगोर पर भाषण सुनना पड़ता है। फिर गोपाल बाबू को पूरा विश्वास है कि सुभाष बोस अभी जिन्दा है और भारत को 'ताक रहा है।' सुभाष बोस की मचान गोपाल बाबू द्वारा कभी रूस में लगती है कभी दक्षिणी अमरीकी प्रजातन्त्र में, कभी flying saucers में। मैं जरा प्रजातन्त्र की मान्यताओं की ओर हूँ तो गोपाल बाबू एक अजीब सरल ढंग से सुभाष-डिक्टेटरशिप, पुरानी सरल हुकूमत और अगामी करें मजदूर राज की दुहाई बिना रंग बदले एक साँस में दे देते हैं। खैर कुछ भी हो मैं उनका आदर उनके एक 'इन्टलैक्चुअल' होने की वजह से करता हूँ; उन्हें आप कभी भी किसी विषय पर कितनी ही देर के लिए बात में लगा सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वह बुद्धि जीवी है और विचार ही उनके लिये जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज हैं। यह दूसरी बात है कि परिस्थितिवश उन्होंने बहुत कम पुस्तकें पढ़ी हैं और पढ़ सकते हैं।

उस जाड़े की सुबह मैं, कम्बल में लिपटा, अखबार का इन्तजार कर रहा था। ये शहर बनाने वाले प्रकृति सौंदर्य को जड़ से उखाड़ फेंक देना चाहते हैं। हमारी सारी सड़क में दतऊन ही के लिये एक नीम का पेड़ भी नहीं है। जो एक दो क्यारी जमीन इन घर वालों के पास है उसमें सब्जी उगाई जाती है, या पपीता। बेल के नाम पर नेनुए के पीले फूल दीख सकते हैं या कोहड़े का विस्तार। पर जाड़ों की सुबह मिडिल क्लास को उन्हीं के अस्त्रों से परास्त कर देती है। पत्थर के कोयले की अँगीठियों के धुएँ के बादल ठिठुरी सड़क में व्यवहार जगत की बेशरमी पर परदा सा डालते घूमते हैं।

गोपाल बाबू बिलकुल हाँफते हुए आये। मैं यह पूछने वाला ही था कि क्या उन्हें सुभाष बोस का अता-पता लग गया है।

"नवीन बाबू गजब हो गया है, जरा मेरी मदद करिये। क्या मेरे बुढ़ापे में!" मैंने उनके हाथ माथे से हटाए और कुछ बताने को कहा।

"शरम आता है। क्या बतायगा? रात खोखा लौट कर नहीं आया।

घबराता रहा। आज मालूम हुआ पुलिस पकड़ लिया है। साइकिल चोर!"

गोपाल बाबू ने क्रमशः बतलाया कि सबेरे शम्भू दूधवाले ने उसे थाने पर देखा था। छोटे दरोगा के घर दूध देते समय। उसे बात-बात में मालूम पड़ा था रात में साइकिल के साथ पकड़ा गया। गोपाल बाबू मारे शरम के थाने की जगह मेरे घर आये थे कि मैं जाऊँ, जमानत दूँ इत्यादि।

मैं अन्दर सिर्फ कुर्ता बदलने और चप्पल पहिनने गया था पर मेरी माँ को किसी योग से अन्तर दृष्टि मिली है। पूछ उठीं "कहाँ जा रहे हो नवीन" मैंने उनकी तरफ बिना देखे ही उत्तर दिया, "कुछ नहीं माँ, यही थाने तक ज़रा जा रहा हूँ। कुछ गलत फ़हमी हो गई दीखती है।"

मेरी बहिन जिसे शायद बेमौके बोलने का बरदान मिला है, बोली "माँ गोपाल बाबू ले जारहे हैं।"

माँ तहसीलदार के कोर्ट के वकील की तरह से पूजा अलग कर मुझ पर जुट पड़ी। "खोखा होगा। पक्का चोर है, स्कूल में पकड़ा-पीटा जा चुका है। बाप को तो गृहस्थी देखने की तमीज है नहीं, जोड़नी भर आती है।" मैंने माँ से आहिस्ते बोलने की याचना की।

बहिनजी फिर बोल पड़ीं, "माँ कल डाक्टर साहब के नौकर की साइकिल चोरी गई थी। पप्पू बतला रहा था।"

माँ का शक हरा हो गया, "खोखा, वही लेगया होगा। मुझे पक्का विश्वास है। नवीन मैं बतलाए देती हूँ तुम जरा सम्हल के बीच में पड़ना। अकेले मत जाओ, सुदेश को ले जाओ साथ। सुदेश को कुछ तो समझ है।"

मैं यह मानता हूँ कि जिन्दगी पर मेरी व्यावहारिक पकड़ कच्ची है, पर इसकी बार-बार याद दिलाना माँ को शोभा नहीं देता। व्यावहारिकता को मैं बहुत मामूली और आसान मानता हूँ कोई भी पूरा ध्यान दे और अपनी कल्पना और आदर्शों को सकुँचित रखे तो व्यवहार पटु हो सकता है। मुझे ऐसा ख्याल है कि मैं करना चाहूँ तो सुदेश से अच्छा मोल भाव कर सकता हूँ। अक्सर किसी पचड़े पर जब मैंने और सुदेश ने साथ माथापच्ची की है तो मेरा सुझाव काम का निकला है। यह बात दूसरी है कि खास करने की बात शायद सुदेश सिर्फ अधिक अनुभव और आदत के ही कारण ज्यादा अच्छी तरह

कर सके ।

मुझे सुदेश को साथ ले जाने की बात याद न दिलानी चाहिये थी । उसके बगैर मैं कब थाने जा रहा था ।

मंजुजी मेरे चलते ही कह पड़ी, "दादा मैं भी चलूँ । मैंने थाना कभी अन्दर से देखा नहीं ।"

मैंने उचित व्यंग से माँ से कहा, "क्यों माँ मंजु को भी तो समझ है ? इसे साथ ले चलूँ ।"

पर माँ जब नहीं सुनना चाहती है तो किसी के इशारे का ख्याल ही नहीं करतीं "तुमसे और क्या होगा ? भले घर की लड़की थाने हो आए । फिर कहाँ की रहेगी ?"

मैं साइकिल उठा, चल पड़ा ।

जब मैं पहुँचा सुदेश कपड़े बदल रहा था । उसे बात पहले ही मालूम हो चुकी थी । शम्भू दूधवाला दूध के साथ, यह खबर भी दे गया था और इसी खबर पर सुदेश तैयार हो रहा था ।

मैंने कहा, "क्या करने की सोची है ? क्या खोखा सच में चोर है । तुम्हारा क्या ख्याल है ।"

"फर्क क्या पड़ता है ? खोखा चोर हो या नहीं हमें तो उसे बचाना है ।" मुझे सुदेश की यह आदत बेहद नापसन्द है । वह किसी मसले को समझने, सुलझाने की जगह गुम कर देता है । आज वह अपने इसी मूड में तुला मालूम पड़ता था ।

"फर्क कैसे नहीं पड़ता ? अगर वह चोर नहीं है तो हमें पुलिस के विरुद्ध कार्यवाही करनी चाहिये ।"

"और अगर चोर है तो गोपाल बाबू को आई. पी. सी. की ३७९ दफा दिखलानी चाहिए । बकवास ।"...पर खोखा यह किसकी साइकिल कैसे ले आया !"

"अगर तुम बकवास सुनना चाहो तो मैं बतला रहा था कि साइकिल डाक्टर भगत की है । मंजु से पप्पू बतला रहा था कि नौकर वाली साइकिल खो गई है ।" सुदेश एकाएक रुक गया । "पर कल डाक्टर भगत घर आया था— उसने तो नहीं कहा ।"

"डाक्टर भगत आया था। क्यों क्या माँजी की खाँसी फिर उभड़ गई है ?"

"अरे नहीं! वह उसीलिए आया था। शाम आया था, फिर चोरी रात को मालूम पड़ी होगी।"

मैं समझ गया। 'उसी' का अभिप्राय डाक्टर भगत का शान्ती की शादी सुदेश के साथ करने की इच्छा से था। हम लोग इस पर कई दफा बहस कर चुके थे। मुझे तो हमेशा से शान्ती पसन्द थी और मेरी धारणा स्पष्ट थी; शान्ती का छुटकारा जितनी जल्दी डाक्टर भगतसे हो सके भला है और सुदेश द्वारा हो तो और भी अच्छा। इस बात पर सुलझे, समझदार श्री सुदेश अपने व्यक्तित्व और मस्तिष्क की असली कमजोरी दिखलाते थे। सच में मैं उसे कई दफा प्रदर्शित कर चुका था, कि उसकी कोई धारणा ही नहीं। इधर-उधर की टूटी-फूटी बातें कर वह विचार और निर्णय से बचा करता था। जैसे—ओ वह बिलकुल बच्ची है; ठीक उम्र न मुझे मालूम थी न सुदेश को। उस गधे डाक्टर भगत का बस चले तो वह शान्ती को दुधमुहीं करार दे। फिर सुदेश इतना गया बीता तो नहीं था कि उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की चुप्पी में सयानापन न देख सके। फिर अनुभव कोई जगत भ्रमण से ही तो नहीं होते। कभी सुदेश कहता—मैंने शादी करने की ही नहीं सोची। यह सोचने को प्रोत्साहन ही तो किया जा रहा था! आप बिना शादी करने पर सोचे हुए कैसे शादी नहीं कर सकते हैं—यह तर्क सुदेश को हमेशा परास्त कर देता था। फिर अपने खयाल में, इस मसले पर मैं सुदेश को ज्यादा समझता हूँ। सुदेश बिना शादी के नहीं रह सकता—मेरा मतलब उसके सारे व्यक्तित्व के लिये शादी जरूरी है। सुदेश के लिए जिन्दगी में वैयक्तिक नाते ही सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ हैं—उसे दूसरों का भार लेना या, अपनाना पसन्द है। मैंने देखा है उसका विचारों और पुस्तकों में भी भाव इस बुनियादी भाव के सहारे होता है। सुदेश के विपरीत जैसे मैं, मेरे लिए व्यक्ति से ज्यादा महत्त्वपूर्ण विचार हैं। मैं इस सब नातेदारी के बिना भी रह सकता हूँ; मुझसे नाते निभाना नहीं होता। फिर सुदेश का आर्थिक लाचारी इंगित करना तो बिलकुल निकृष्ट तर्क है। सबको मालूम है कि सुदेश मेरी तरह पान चबाने वाला अपर डिवीजन क्लर्क तो रहेगा नहीं—यदि कोई भी दुश्वार S.A.S. का इम्तिहान पास कर सकता है तो वह सुदेश ही। पर उस समय सुदेश से वह पुरानी

बात छेड़ने का समय न था। हम लोग हकीमगंज थाने की ओर चल दिए।

मैंने पूछा, "दरोगा जी को कितने रुपये देने पड़ेंगे। हरीशंकर वकील को ले चलो, जमानत वगैरह की बातें ज्यादा समझेगा।"

"पुलिस वालों को मनाना तो शायद मुश्किल हो। डाक्टर साहब से कहेंगे वह मुक़दमा न चलाएँ।"

फिर हम लोगों में बातें न हुई। मैं भी आने वाली समस्या पर सोचने लगा।

थाने के दरवाजे से अन्दर आप एक आँगन में आते थे। दो तरफ सिपाहियों की बैरकें थीं, हवालात थी और सामने की तरफ थाने का दफ्तर था। आँगन में एक पीपल का पेड़ भी था। मुझे थाने के वातावरण में एक अखरता निजीपन लगा। एक कोने में दो लँगोट बाँधे सिपाही दण्ड बैठक कर रहे थे। खाटें उठी रखीं थीं। दीवानजी पेड़ के पास बनियान तहमद में थे। वातावरण में एक रोज़मर्रापन था, जो अपने भय, अकुलाहट से मिलाने पर अखरता था। हमें आशा थी लैस-बद्ध क्रूर अनुशासन की वहाँ एक अजीब तकुल्लफी फैली होगी। हम लोगों ने दरवाजे के पास ही साइकिलें खड़ी कीं। मैंने जरा झिझक, आदत-वश साइकिल का ताला बन्द किया।

पीपल के पेड़ से जरा हट कर एक लकड़ी का मेज पड़ा था। स्टूल पर बाईं तरफ खोखा बैठा था। हाफ पैंट और कमीज-स्वेटर में ठिठुरा। बाल ऊल-जलूल फैले थे और आँख लाल और फूली हुई थी। बेचारा बहती नाक से पीड़ित था।

मेज के आमने-सामने दरोगाजी और डाक्टर भगत बैठे थे।

डाक्टर भगत एक कैप्सटन का डिब्बा बढ़ा रहे थे—

दरोगा जी ने हाथ हिलाकर मना किया, "मैं सिगरेट का शौक़ नहीं करता।"

"पीता वीता तो मैं भी नहीं पर तब भी कभी कदा तो पीते होंगे।"

हम लोगों ने अपना आगमन उन लोगों पर बढ़ कर जाहिर किया।

सुदेश ने कहा, "यह खोखा, दरोगा जी, हमारे मुहल्ले का है। श्री गोपाल बनर्जी का लड़का है, शरीफ घराने का है। वे बेचारे शरम से आ नहीं पा रहे। अगर आप हमारा भरोसा कर इसे छोड़ सकें।"

दरोगा बड़ी उमर का था और कुछ मस्त प्रकृति का मालूम पड़ता था।

लगता था जैसे वह हमारी बातों में मनोविनोद का साधन पा रहा हो। उसने हाथ घुमा हमें पास पड़ी एक लकड़ी की बेंच पर बैठने की अनुमति दी।

सुदेश ने डाक्टर भगत को भरपूर देख कर कहा, "नमस्ते डाक्टर साहब"।

दरोगा जी बोले, "मुजरिम चोरी की साइकिल के साथ पकड़ा गया है, उसने यह इकबाल किया कि साइकिल उसकी नहीं है। डाक्टर साहब अपनी साइकिल पहिचान रहे हैं। साफ ३७९/४११ का मुकदमा बना है।"

मुझे खोखा का ठंड में सिकुड़ना तब से खटक रहा था। मैंने कोट तो उतार दिया था, अब हिम्मत कर दरोगाजी से आखों में अनुमति माँग, कोट खोखा को पहिना दिया।

सुदेश ने विनय से फिर कहा, "गलती इसने जरूर की है, पर अभी लड़का है और सुधर सकता है। मुकदमा चला तो कहीं का नहीं रहेगा, और घर वालों को मुँह दिखाने को नहीं रहेगा। डाक्टर साहब आप ही कहिये?"

डाक्टर भगत ने हमसे नमस्ते कर ली थी पर तब से कुछ आँख बचा रहे थे! "सुदेश जी आप भी अपनी-सी बात कर रहे हैं। पप्पू मुझे बता रहा था खोखा पुराना बदमाश है, इस पर दया की कैसी बात। इन लोगों को शह देना तो संगीन जुर्म बढ़ा सकता है। फिर हम लोगों की बात कानून से नीचे है, यह तो आप भी मानेंगे—जब वह कानून के पंजे में है तो हम उसे कैसे बचा सकते हैं।"

डाक्टर भगत के प्रकटित रूप से सुदेश तो अवाक रह गया। मेरे लिए उनका यह खोटापन आश्चर्य की बात नहीं थी। मैं तो उनसे ऐसे ही कुछ की आशा कर रहा था।

मैंने कहा, "जहाँ तक कानून की बात है दरोगा जी शायद सहमत हों डाक्टर भगत की साइकल पचास रुपये से कम की ही होगी। वही तो है खड़ी–लगता है जैसे कबाड़ियों ने बेची हो। और अगर ५०) से कम है तो कानूनन डाक्टर साहब हमसे सुलह कर सकते हैं।"

दरोगा मेरी बात पर हँसने लगा। "जी हाँ वह तो है ही साहब। क्यों डाक्टर साहब क्या खयाल है? फिर यदि आप ही मुकदमा न चलाए तो मैं किस खाक गवाही के सबूत पर मुकदमा करूँगा।" मैंने देखा कि सुदेश को

बहुत बुरा लग रहा है। उसके लिए शायद यह सारा झंझट बड़ा अपमानजनक था। वह किसी मसले को सिर्फ मसले की तरह लेने में सदा असमर्थ रहता है। सदैव व्यक्तित्व मिल जाते हैं। डाक्टर भगत को शायद मेरी बात बुरी लगी। "साइकिल मैंने खुद साढ़े तीन सौ में खरीदी थी। मेरी रपट शायद दरोगाजी के पास है। मैं उसमें सब कुछ कह चुका हूँ। मैं आप लोगों की तरह भावुक दृष्टिकोण नहीं ले सकता। शायद इसलिए कि मेरी ही गठरी गई है।"

दरोगा ने अपने हाथ खोल दिए। मैंने सुदेश के हाथ पर हाथ रखा। मैं पहिचान रहा था कि वह आपे से बाहर होने ही वाला है।

मैंने फिर कोशिश की। "डाक्टर साहब आप क्या गजब कर रहे हैं। जरा सोचिए—आप खोखा को पहिचानते नहीं? रोज आपके घर आता है आपके बच्चे इससे खेलते हैं।"

डाक्टर साहब बोले, "आजकल के जमाने में अपना पराया समझना बड़ा मुश्किल है। धोखे हो जाते हैं।"

मैंने दरोगाजी से पूछा, "यह खोखा पकड़ा कैसे गया। मुझे तो सब गलतफहमी मालूम पड़ती है।"

दरोगाजी मेरे प्रयत्नों पर मुस्करा रहे थे। खैर, डाक्टर भगत से ज्यादा तो उनकी अनुकम्पा से ही आशा की जा सकती है।

"कैन्टोनमेण्ट से रात को देर से साहबजादे लौट रहे थे। चौराहे पर टोकर खा गिरे। सिपाहियों ने देखा न बत्ती है, न लाइसंस है, नावक्त मौका था। उसे शक हुआ। उसने पूछा तो बतला दिया कि साइकिल उसकी नहीं है।"

सुदेश ने अजीब आवाज में बातचीत की डोर मुझसे ले ली—

"तो खोखा, उसे बेचता तो नहीं पकड़ा गया? वह तो घर आ रहा था न? आपने पूछा उसने बतला दिया?"

"जी हाँ।"

सुदेश ने मुड़कर डाक्टर भगत की तरफ करीब-करीब चीखकर कहा, "डाक्टर साहब तब फिर चोरी का सवाल ही नहीं उठता। साइकिल तो वह आपके घर से माँग कर ले गया था।"

मैं भी डाक्टर साहब की तरह जरा चकित हुआ। पर मुझे मालूम हो रहा

था कि कुछ महत्त्वपूर्ण बात हो गुजर रही है।

मैंने भी साथ देना ठीक समझा, "सुदेश का मतलब है क्रिमनल ब्रीच ऑफ ट्रस्ट नहीं हो सकता। चोरी तो थी ही नहीं।"

डाक्टर भगत ने लाल-पीला होना शुरू किया, "आप क्या कह रहे हैं सुदेश जी ? आज आपको क्या हो गया है ? अजी जनाब कल ही तो मैंने साइकिल की चोरी की रपट लिखाई है।"

दरोगाजी ने खंखारा, "साइकिल माँग कर ले गया था ?"

सुदेश ने कहा, "जी हाँ, हम लोग अभी आते समय इन डाक्टर साहब के घर से होते आ रहे हैं। यह थे नहीं, बाहर ही इनकी लड़की खड़ी थी। उसने हम लोगों से बतलाया था कि खोखा साइकिल माँग कर ले गया था।"

डाक्टर भगत चिल्ला पड़े, "सुदेशजी आपका दिमाग तो नहीं खराब हो गया है। कल रातही सबसे पूछा था ; किसीने खोखा या किसी को भी साइकिल नहीं दी थी। यह सब सरासर मनगढ़न्त है।"

मैंने जरा आवाज टेढ़ी करके कहा, "डाक्टर साहब आप क्या यह कह रहे हैं कि मैं और सुदेश झूठ बोल रहे हैं ? दरोगाजी—"

डाक्टर साहब ने कहा, "साहब मैं यह नहीं जानता हूँ। पर आपकी बात तो समझ में ही नहीं आती है। मैं जाल समझता हूँ।"

सुदेश एकाएक मिठास में बोला, मैं समझा सकता हूँ अगर आप समझना चाहें। दरोगाजी आपने इनके क्रोध को तो देख ही लिया है। क्या यह आश्चर्य की बात है, कि इसके डर से घर वालों ने इनसे बात छिपा ली हो। वे लोग क्या जानते थे कि यह पुलिस तक मामला ले जाएँगे। मुझे खुद आश्चर्य है।"

मैंने खोखा की तरफ देखा—उसका सहमत होना जरूरी था पर वह तो बेचारा अपने जुकाम में समाया बैठा था।

डाक्टर साहब उठ खड़े हुए, "दरोगा जी यह सब सरासर गलत है।"

दरोगा ने खोखा को डाँट कर पूछा, "तुम्हें साइकिल इनकी लड़की ने दी थी ?" खोखा ने सिर हिला हामी भरी। खोखा को शायद प्रश्न ही नहीं समझ में आया था।

मुझे अपनी माँ की कही एक बात याद आई। मैंने कहा, "दरोगाजी,

शक दूर करने का एक सीधा उपाय है। उस लड़की को बुला लिया जाय।"

सुदेश मेरी तरफ ऐसे घूमा जैसे मैंने उसे मारा हो। ऐसे समय में उसे अपनी दूरदर्शिता समझा तो नहीं सकता था। चुपचाप आँख हटा ली।

डाक्टर भगत मुझ पर बरस पड़े। "आप अजीब शरीफ आदमी हैं। मेरी लड़की को थाने बुलवाएगें—आपको शर्म नहीं आती।"

मेरा भी धैर्य समाप्त हो चुका था। "आप बहुत शर्म रखते हैं। एक बेगुनाह शरीफ छोकरे को जेल भेजने पर तुले हैं।"

सुदेश हमारी विजय के क्षण सिरडाले गुमसुम हो गया था।

दरोगा खड़ा हो गया, "डाक्टर साहब आप समझ लीजिये। अगर वह लड़की आपके खिलाफ गवाही दे देगी तो मुकदमे का क्या होगा। आप जाकर तय कर लीजिए। ये लोग आप पर इज्जत का दावा भी ठोक सकते हैं।"

"मुझे कोई मुकदमा नहीं करना। मैं साइकिल ले जा सकता हूँ?"

डाक्टर साहब ऐसे स्वर में गये कि मुझे कोई विजयोल्लास न हो सका। सदैव व्यक्तित्व आ जाता है। अब उनके एक अपमानित बाप का रूप दिल बेंध देता था।

हम लोग खोखा को ले वापिस चले। सुदेश बिलकुछ चुप हो गया था। एक फर्लाङ्ग चल चुकने पर मैंने अपने आपको कुछ कहने पर बाध्य पाया।

"सुदेश क्या डाक्टर आकर मुकदमा करेगा? घर से लौट कर।"

सुदेश उत्तर में मुझ पर झुझलाने लगा। "क्या तुम्हारा दरोगा से दोस्ती बढ़ाना जरूरी था। तुम भी हद करते हो नवीन। तुम्हें तो बस अपनी अक्ल प्रदर्शित करने का मौका मिले तो तुम कुछ भी कर डालो। तुम्हें कभी औरों का भी खयाल होता है।"

मैं अपनी सफाई में बहुत कुछ कह सकता था। आखिरकार, शान्ती को आड़ में लाने का सुझाव तो उसका ही था। मुझे तो ऐसा करने का आत्मविश्वास ही नहीं होता न इस बात की हिम्मत पड़ती। मैंने सिर्फ उसके उपयोग में हाथ बटाया था। यह सब मैं कह सकता था—पर सुदेश को मुझसे ज्यादा शायद अपने ऊपर क्रोध या खीझ थी। मुझे उस तरह शर्म से पीड़ित उस पर दया आई और मैं चुप रहा। गोपाल बाबू के घर सुदेश उतरा नहीं—हाथ हिला चला गया।

खोखा को लौटाना मेरे लिए दूसरी मंजिल थी। बरामदे में कोई नहीं था।

में उसका हाथ पकड़ अन्दर चला गया। उसकी बहिने और माँ, एक तरफ जुड़ी बैठी थी। मैंने माता जी को बुला, खोखा को बढ़ाया। शायद एक क्षण वे रुकी रहीं—मैंने जाना कि मेरी उपस्थिति उनके खुले लाड़ में बाधक हो, मैं बाहर का था, जिसके सामने खोखा चोर था। मैं मुड़ चुका था जब एक रुलाई की चीख में खोखा उनके हृदय में खींच लिया गया।

बैठक में गोपाल बाबू मूर्ति बने बैठे थे। मैंने उनके चेहरे की झुर्रियाँ बहस में उत्तेजित ही देखी थीं···कितनी उम्र, हताशपन उनमें था। उन्होंने खोखा का लौटना सुन लिया था। मैं समझ नहीं पा रहा था कि गोपाल बाबू किस झिझक में बाँधे बैठे थे—एक पिता की हार की बेड़ियाँ थीं या सिर्फ स्नेह का असमंजस जो झुकना भी चाहता है और बिना झुकाए झुक भी नहीं सकता है। मैं भी बैठ गया। कुछ कहने की सोचने लगा।

कमरे का दरवाजा खुला। खोखा दरवाजे में खड़ा, मेरा कोट मुझे दे रहा था। उसने बँगाली में कहा, "माँ कह रही है, चाय पीकर जाइयेगा।" गोपाल बाबू ने उत्तर नहीं दिया। वह दो क्षण और खड़ा रहा, मैंने कोट ले लिया था, उसने कहना कह दिया था—खोखा मुड़ कर चला गया।

एकाएक मैं समझ गया। "गोपाल बाबू अब चलूँ। दफ्तर को देर हो रही है—माँ से क्षमा कह दीजिएगा।···हाँ खोखा का देह गरम हो रहा है, बुखार है। जरा ध्यान रखियेगा।"

मैं ठीक था। गोपाल बाबू खड़े हो गये। "क्या कहा नवीन बाबू—बुखार आ रहा है। यह लोग उसे गलत-सलत खिला देगा। बुखार—"

मैं जब तक बाहर निकला वे मकान के अन्दर जा कर खोखा के ठीक खाने का इन्तजाम कर रहे थे।

शाम जब मैं घर लौटा मंजु मेरे खिलाफ अभियोग लिए तैयार थी। नाश्ता क्या किया माँ की अदालत में उस अटर्नी की जिरह में त्रस्त रहा। उसे सब मालूम था।

"माँ—शान्ती पर इतनी मार पड़ी कि वह आज स्कूल से घर ही लौटने में सिसक रही थी। अजीब बात है कल मुझसे शान्ती ने यह बात नहीं बतलाई थी कि उसने खोखा को साइकिल दो थी। मैं होती तो सफा फिर जाती।"

मैंने मंजु को उत्तर दिया, "शान्ती तुम्हारी तरह की नहीं—खुदा का शुक्र है! तुम्हारा एतबार जिसे होगा धोखा खाएगा।"

मीना

मैं विजय और दत्ता की शादी में आमंत्रित था। काफी खुशामद पर छुट्टी मिली। माँ लखनऊ तक जाने-आने का खर्च बतला डराती रह गई, परन्तु मुझे उन लोगों की शादी में उपस्थित होने का एक भूत-सा सवार था। सच, मैं सोचता था जैसे कि मेरी एक तरह से उस उत्सव पर जरूरत हो। विजय और दत्ता की शादी जाँत-पाँत की अवहेलना कर हो रही थी और मैं अब भी इतना रोमांटिक हूँ कि किसी भी क्रान्ति में योग देने का अवसर नहीं खो सकता।

माँ इतने आहिस्ते सामान बाँध रही थी कि आखिरी स्ट्रैप बँधने तक शायद लौट आने की घड़ी और दिन आ जाँए। अभी तक उन्हें मेरे निर्णय पर भरोसा नहीं था।

"माँ, गाड़ी साढ़े-नौ बजे जाती है और तुम ! स्टेशन तक पहुँचने में आधे घंटे से ऊपर लगता है।"

एक कमीज को सूटकेस में रखते हुए उसने कहा, "मैं तो हमेशा समझती थी कि तुम्हें विजय पसन्द नहीं है; कोई खास तो तुम्हारी दोस्ती थी नहीं। यह एकाएक क्या मोह उमड़ा है ?"

"गजब करती हो, जैसे यह शादी की खबर कोई नई बात ही नहीं। वहाँ और जो लोग आयेंगें सब तुम्हारी तरह के होंगे, शक करते सिर हिलाते। 'चलेगी नहीं', कहते। मैं चाहता हूँ कि बारात में कम से कम एक तो ऐसा हो जिसे विवाह का 'पक्का' किया न होना दोष न जँचे, जो विवाह के पूर्व प्रेम होने की बात में गौरव कर सके।"

माँ की एक बुरी आदत है वह किसी से बात करने में भी अपने मन के किसी सिलसिले से बोलती हैं।

"सुना है लड़की तो खत्री है ? उसको तो एक से एक सुन्दर लड़के सर-

कारी नौकरी में मिल सकते थे। कायस्थ के घर जाने की क्या सूझी। फिर विजय के खास सिर-मौर भी नहीं; मैं कहती हूँ नवीन, उसके बाल झड़ रहे हैं, दो साल में गँजा हो जायगा।"

मैंने जरा झिड़क कर कहा, "पहली बात, यह एक खत्री की कायस्थ के घर जाने की बात नहीं। दत्ता, दत्ता है, विजय, विजय है। दत्ता विजय की हो रही है। और आखिरी बात, माँ तुम यह नहीं समझ सकतीं, लाचारी है। तुम क्या प्रेम की कल्पना नहीं कर सकती हो, ऐसा प्रेम जिसमें कि किसी का गंजापन नहीं खटके।"

माँ ने जोर से क्लिक के साथ सूटकेस बन्द किया।

"होल्डाल बिछा, मैं बिस्तर लगा दूँ।"

मेरी इच्छा हुई कि माँ को कुछ समझा ही दूँ। असल में इन पुरानी पांती के लोगों की व्यक्तिगत सम्बन्धों में सूक्ष्म दृष्टि नहीं है। यह शादी का नाता तय करने में, आर्थिक वर्ग, गोत्र, पीढ़ी, स्थिति सब पर खूब मनन करते हैं पर व्यक्तियों की अनुकूलता की नहीं सोचते। उन्हें परिस्थितियों या जिनसे मनुष्य का चरित्र बनता है, मनन करने की फुर्सत है, पर बने बनाए मनुष्य को समझने या उस पर विश्वास करने की अक्ल नहीं। उन्हें अपनी गणित पर विश्वास है, अपनी दृष्टि पर नहीं।

माँ का मन कहीं और घूम रहा था "पिछले साल तो तुम्हारा विजय गुजराती सीख रहा था। उसका क्या हुआ?"

मुझे माँ का यह कहना बुरा लगा। ऐसे समय में उस पुरानी बात को याद ही नहीं करना था। माँ की बात कुछ अरुचिपूर्ण थी। खैर, मुझे माँ उस बात की याद दिला डिगा नहीं सकती थी। मैं विजय का वह किस्सा समझता था और मैं 'प्रेम' में विश्वास को सिर्फ पहले प्रेम के विश्वास तक सीमित नहीं रखता हूँ। और चीजों की तरह हमें प्रेम में भी धोखा हो सकता है, और ऐसे धोखे से हम प्रेम पाने से वर्जित तो नहीं हो जाते। मैं माँ को उत्तर न दे चुप ही रहा।

"लो बाँध लो" माँ अन्दर चली गई। मैंने नौकर को आवाज लगाई। जाते समय माँ ने पूछा, "नवीन! बहू के लिए कुछ ले जा रहा है?"

"कुछ खरीदने का मौका ही नहीं मिला, आज ही रुपये निकलवाये। लखनऊ में ही कुछ खरीदने की कोशिश करूँगा।"

गाड़ी में भीड़ तो नहीं थी पर सोने की सुविधा भी नहीं थी। रात के कारण बाहर देखने को निकट और दूर वही अँधेरा था। डिब्बे के अन्दर ऊपर की दोनों सीटों पर पहले से आसन बिछाए दो विद्यार्थी बेखबर सो रहे थे; नीचे दो सिख, एक फौजी और मद्रासी परिवार की कई अदद ऊँघ रही थी। नींद तक में सब चेहरे एक बड़ी ऊब झलकाते थे। मेरी दृष्टि अधिकतर बिजली की बत्ती में जा अटकती, न जाने कहाँ से आये पतंगे उसके चारों तरफ तिलमिला रहे थे। माँ अभी तक विजय से चरित्र की पहेली नहीं सुलझा सकीं थी। माँ के अनुसार, "विजय अपना भला बुरा, आगा-पीछा खूब समझता है" और उसके व्यवहार-पटु होने के कारण माँ उसको प्रेमी के रूप में नहीं देख सकती थी। यह एक परले सिरे का रोमेन्टिसिज़्म मैंने अक्सर बड़े बूढ़ों में देखा है। या तो वह प्रेम में विश्वास ही नहीं करेंगे अथवा प्रेम को शेली के 'स्काई लार्क' में घटित होने वाली वस्तु मानेंगे। वे प्रेमी को सिर्फ लम्बी जुल्फों, आह और चाँद पर रहने वाले में ही पहिचान सकते हैं। किसी के छोटे बाल हुए अथवा न हुए तो बात असम्भव मान ली जाती है।

मेरा तो अनुभव बिलकुल विपरीत है। ये लम्बी जुल्फों वाले तो प्रेम के स्कॉलर और टीकाकार होते हैं, इनके लिए प्रेम की सहज कविता समझना सर्वथा असम्भव होता है। उन्हें अपने प्रेमधर्म निभाने का इतना ख्याल रहता है, वे प्रेम की इतनी ताक में रहते हैं, कि जो कुछ भी मामूली प्रेम यह जगत उन्हें दे सकता है, उनकी महान् आशा के समक्ष अनुपयुक्त साबित होता है।

विजय को ठीक समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि समझनी चाहिए। उसके पिता एक छोटी नौकरी में थे। भाइयों में सबसे बड़े परन्तु माली हालात में सबसे हीन। विजय बचपन से हमेशा फर्स्ट आया और ज्यादा से ज्यादा प्रतियोगिताओं में मेडल जीतता रहा। मेरा तो पक्का विश्वास है कि बालकों पर पढ़ाई को संजीदगी से लादने की लाचारी उनके स्वभाव को हमेशा के लिए संकीर्ण बना देती है। वे जगत के एक अनावश्यक रहस्य को उम्र से पहले जान लेते हैं, जब उनकी आत्मा की सौम्यता उस भार को वहन करने लायक शक्तिशाली नहीं

होती। ऐसे बच्चे सफल ही नहीं होते परन्तु सफलता को एक अनुपयुक्त और बड़ा महत्व देने लगते हैं।

हाईस्कूल से ही विजय अपने कमरे में मामा की तस्वीर रखने लगा था। श्री जे० के० वर्मा भारत सरकार में सचिव थे। मुझे याद है बी० ए० में फर्स्ट डिवीजन आने पर उनकी बधाई से विजय को सबसे अधिक संतोष मिला था। मुझे भी उसने वह पत्र पढ़कर सुनाया था। सरकारी कागज पर, टाइप किया वह उच्च आदर्शों और आकांक्षाओं को बड़े सुचारु रूप से इंगित करता था। विजय गर्मियों की छुट्टियाँ उन्हीं के घर बिताता, लौटने पर उसका दिमाग गजब का चढ़ा रहा करता था। कमिश्नर ने यह कहा, मामा जी ने मुझे इनसे मिलाया, उसने यह मजाक की। मिनिस्टर साहब भी उससे अच्छी तरह मिले थे। फिर वह सदा मामा के एक-दो करीब-करीब नये सूट भी ले आता था। मैं विजय की रुचि में भी जे० के० मामा की झलक देखा करता था। जैसे विजय के लिए उत्तम सिनेमा वही बरुआ, सहगल, कानन बाला के जमाने के थे, जिन्हें संभवतः विजय ने या तो देखा ही न हो या बचपन में जिनमें मामा जी के साथ गया हो। उसी तरह वह भी जीवन में 'स्वस्थ' और 'अस्वस्थ' श्रेणियाँ बनाया करता था। क्रिकेट के बल्ले में प्रलाप स्वस्थ है, उपन्यासकार के बारे में प्रलाप अस्वस्थ। व्यंग्य अस्वस्थ है, प्रहसन स्वस्थ है। जान पहिचान स्वस्थ, पर किसी से खास दोस्ती अस्वस्थ। और इसी तरह।

जब भी कभी मैं विजय के घर जाता था, मुझे उसके माता-पिता पर दया आती थी। वे बेचारे विजय को बहुत प्यार करते थे और संभवतः उसके सबसे बड़े भक्त थे। उसकी प्रतिभा, उसकी सफलता उन्हें बड़ा उल्लासित करती थी और वह अपने प्रेम और नाते का अधिकार एक अजीब शर्म और शान में दबाए रखते थे। वे शायद सबसे पहले ही विजय को प्रेम लौटाने के कर्त्तव्य से बरी कर देते।

पर विजय के जे० के० अध्याय पढ़ने में कोई कमी ही रह गई होगी क्योंकि गुजराती सीखने की हिदायत मामू के साहित्य में नहीं हो सकती थी। मीना और विजय में शायद एक सबसे बड़ी समानता थी कि वे दोनों अपने आपको जरा भी नहीं पहिचानते थे। इस ओर उनका झुकाव ही नहीं था; मेरे ख्याल में न

उन्हें ऐसा कुछ करने की प्रेरणा होगी। मीना की मामूली अक्ल का अंदाज हमें अनायास ही हो गया था; देखने में वह ऐसी नहीं थी कि कोई गर्दन मोड़े। मैं मीना के आत्मतुष्टि का कारण नहीं समझ पाता था। सदा उसका चेहरा सौम्य रहता था, संतुष्ट। जिस दिन उसने पहली दफा जलसे में गाया हम लोगों की शंकाएँ दूर हुईं। मीना अपने स्वर में वह सब आत्मा प्रदर्शित कर देती थी, जो मेरा दृढ़ विश्वास था, उसके पास रहने-रखने को भी नहीं थी। यह बात अगर आप विचित्र पाएँ तो मनोवैज्ञानिकों से जिरह कीजिए। मैंने उससे दो दफा आसावरी सुनी थी, और यदि मेरी स्वर-स्मृति जरा सी भी है, दोनों का एक-एक अवरोह, हर आवाज की मोड़, बिल्कुल समान थी। यह नहीं कि आसावरी अच्छी न होने की वजह से हृदय-स्पर्शी न हो। इतना सूक्ष्म स्वर विनिमय कर सकना ही क्या कम है? मैं हर बार उसका गाना सुनने के पहले अपने आपको याद दिलाता कि किसी अच्छे गुरू का टेपरिकार्ड सुनने को मिलने वाला है।

पर जहाँ मीना का गायन मैं घंटों बैठकर सुन सकता था, उससे दो क्षण से अधिक बातें करना नारीमात्र के बारे में अनुचित धारणा बनाने की ओर महान् आग्रह था। पहली बात तो थी मीना की वात्सल्यरस से हम लोगों को विभोर करने की सदैव की चेष्टा। उसके तुतलाते नखरे। वह सदा कुछ कर अपनी पीठ ठुकवाने की ताक में रहती थी। दूसरी बात थी उसकी मितव्ययिता। दुकानदारों से वह सदा सेल्सटैक्स छीनने की कोशिश करती थी। मोलभाव से ही नहीं, उसके जीवन में एक बटोरूपन व्याप्त था। एक मात्र बिना दाम में हो तो उसे स्त्रियोचित शील की बलि देने में भी हिचक नहीं होती थी।

भारतवर्ष में स्त्रियों की अकमनीयता पर शादी तक परदा पड़े रहने की बड़ी सुविधा है। वह जो घर से न निकल सकना है, किसी से भी बोल सकने पर बंधन है, ऐसी सभी सुविधा हमारी नारियों को कल्पना के गुण देने में बहुत सहायक होती है। हम उन्हें दूर से देख सकते हैं, कभी ही जो उनसे दो शब्द बोल पाते हैं, ये ही मजबूरियाँ उनकी परम हितैषी हैं। मीना बेचारी का सबसे बड़ा दुर्भाग्य था उसका स्वातंत्र्य। उसके माता थी नहीं और उसका कालेज में पढ़ना गृहस्थी की आय की महत्त्वपूर्ण वृद्धि करता था। वह ही हमारी क्लास

में लड़की थी जिससे हम उसके घर मिलने जा सकते थे।

अब मुझे याद नहीं कि मैं दिल्ली किस काम से गया था। शाम को कनाट-प्लेस घूमते एकाएक मुझे विजय और मीना एक शो-विंडों के सामने खड़े दीखे। मैं उन लोगों की तरफ झपटा, पर वे लोग खोये से, एक तन्मयता से अन्दर के पुतलों को देख रहे थे। और उस सब भीड़ की चलाचली में अपनी तन्मयता के मामले में सबसे दूर थे।

कपड़ों की दुकान थी। लकड़ी के अति मानव गोल्फ ड्रेस का प्रदर्शन कर रहे थे, एक अति मानवी विलायती विवाह के झीने बादलों से कपड़े दिखला रही थी। मैं अक्सर विजय के मुँह से सुनने लगा था कि अरे जरा मीना के यहाँ रह गया, या मीना ने कहा था वह आयेगी, या मीना ने बुलाया था, पर मुझे उनके संबंध के असाधारण होने का ज्ञान उनके उस साथ खड़े निहारने से एकाएक हो गया। उन्हें अनजाने में देखते रहना जैसे उनकी आत्मीयता पर अनधिकार झाँकी थी।

"ए ! तुम दोनों, बस-बस बहुत हो गया, लोग तुम्हीं को कहीं शो-पीस न समझने लगें।"

दोनों मेरी तरफ मुड़े, "नवीन तुमने तो मुझे डरा ही दिया था।"

"नवीन तुम यहाँ कैसे ? किताबों से कैसे फुर्सत मिली···मीना यहाँ संगीत परिषद् में आई है, मैं···मेरी भानजी के टान्सिल का आपरेशन हो रहा है।" मैंने उनसे कोई हवाला नहीं पूछा था।

"मामाने उसे डफरिन में भरती करा दिया है। उनका ख्याल है बीमारी का इलाज अस्पताल में ही ठीक होता है, घर पर नहीं। तुम्हें आश्चर्य होगा जेके मामा कड़ा जुकाम ही होने पर हास्पिटल में एक दिन रहना पसन्द करते हैं।"

मीना ने अपने शरारती लहजे में कहा, "मैं बतलाऊँ श्री···मैं बतलाऊँ नवीन, हास्पिटल में कोई नर्स होगी।"

"मीना कभी तो तुम अपना ये 'सिलीपन' छोड़ा करो। नर्स होगी !"

मैंने दोनों को मोड़ कहा, "आओ काफी पी जाय।"

अपने सामने दोनों को बैठा मुझे उन लोगों के प्रति एक गॉड फादर भावुकता होने लगी। मीना का मुँह खुशी से उजला था। मीना ने आदत से

लाचार कहा, "यहाँ हम बेकार आए। इण्डिया काफी हाउस जाते, वही काफी एक रुपयेकी देंगे। फिर तुम्हें मालूम है नवीन यहाँ भी वही डालडा चलता है।"

मुझे हँसी आ गई। मैंने उसकी शंका दूर की, "मीना आज मुझे बेवकूफी करने दो। तुम लोग तो इतने खुश लग रहे हो कि डालडा भी तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता।"

"नवीन, हटो भी···।"

विजय रेस्तराँ को गम्भीरता से देख रहा था।

"ये लोग हर साल अपनी फर्निशिंग बदल देते हैं। असली में यह सब 'बार' की वजह से चलते हैं, कोई काफी, आलू-धिताल्लू की वजह थोड़े ही।"

मीना ने कहा, "नवीन, विजय शराब पीनेके बारेमें बहुत जानता है।"

मुझे श्री जेके की आती परछाईं से फिर बेचैनी हो रही थी। हम लोग तीन काफी थे, खुश थे, किसी और को निमन्त्रण क्यों दिया जाय।

पर विजय मुझसे इतना पुछवाना चाहता था कि लाचारी थी।

"क्यों विजय पीने-वीने लगे हो?"

"अरे नहीं नवीन। मामा कहते हैं, नौकरी में बिना लगे यह बुरी आदत है। पर तुम्हें आश्चर्य होगा कि शराब पीने के बारे में बहुत ज्ञान होता है। कौन कब कैसे पी जाय, यह थोड़ा-बहुत मुझे आता है। जैसे···।"

विजय की शैरी, शैम्पेन की बातें सुननी पड़ीं। मैं शायद बड़ा भारी मिडॅल क्लास स्नाब हूँ। मुझे लगा महत्त्वाकांक्षा किसी अप्राप्य वस्तु के लिए तो प्रिय हो सकती है, पर अपने पड़ोसी के जैसे जीवन के लिए तो बहुत ही दब्बू अहं दिखलाती है। भगवान् मुझे ऐसे सीधे हृदय से बचाए। मैं चाहता था, ये दोनों साधारण प्रेमियों जैसे एक दूसरे में डूबी बातें करें, जिन्हें मैं इनके प्रेम के उजाले में बैठा सुन सकूँ।

मीना को चीज-पकौड़े पसन्द आ रहे थे, "नवीन, सुनो, वह हरी चटनी और मँगवाओ।"

मैं बैरा को इधर-उधर देखनेवाला ही था कि विजय पर मीना के इस प्रश्न का प्रभाव दिखलाई पड़ा। उसे जैसे किसी चीज ने डंक मार दिया हो।

"मीना, तुम क्या बिलकुल बेवकूफ हो। आप इसे दुबारा नहीं मँगवा

सकते। बैरा समझेगा कि किसी बिल्कुल बेशऊर लोगों से पाला पड़ा है।"

विजय ने बात इतनी उत्तेजित फुसफुसाहट से कही थी कि मीना का चेहरा बिल्कुल उतर-सा गया। फिर मीना ने साहस कर कहा, "तुम तो विजय, गजब करते हो। बैरा से कोई विनती तो नहीं कर रहे, पैसे दिये हैं।"

"पैसे दिये हैं! ये लोग कोई चाटवाले तो नहीं हैं।"

इस बीच मैंने बैरा की आँख पा ली थी और उसे बुला लिया था। मीना और विजय चुप हो गये। मैंने कहा, "जरा यह चटनी लाइये और एक प्लेट चीज़ पकौड़ाज़।"

मुझे ठीक मालूम नहीं कि कब मीना और विजय का प्यार ढलने लगा। अगले वर्ष विजय कम्पीटीशन्स की तैयारी में लग गया। घर में भीड़-भड़क्का ज्यादा था। उसने एक कमरा अलग कैन्टोनमेंट में ले लिया। कभी शाम को मिलता था तो सूट पहने। इण्टरव्यू में ऐसे लोग लिये जाते हैं, जो सूट ही न पहने हों वरन् जिनको सूट पहनने की आदतहो। वह लाइब्रेरी से चर्चिल की 'वार-मीमॉयर्स' ले गया। यह पुस्तक सब सफल सरकारी अफसर अपनी लाइब्रेरी में रखते हैं। हालाँकि मैं तो स्वयं एग्नास्टिक हूँ, मेरी माँ का धार्मिक होने का काफी ढिंढोरा है। मीराबाई, पीपलबाबा कोई भी शहर आते हैं तो हमारे घर उनका आना अवश्य होता है। उन दोनों सन्तों के उत्तर-प्रदेश में काफी अनुयायी हैं। यह लोग अपने सहज व्यक्तित्व से नहीं, क्रीड़ाओं से हमें ज्यादा लुभाते हैं, दर्शन पर भाषण तो कोई दे सकता है। आँगन में लगे दरबार में विजय अक्सर चरणधूलि लेने आता था। ठीक अनुपात में धार्मिकता स्वस्थ जो है।

मैं माँ के इस दरबार से ही बचने ऊपर चला गया था। मीना कमरे में ऐसे आई जैसे वह तय न कर पा रही हो कि कमरे में आने से कोई फायदा है। मैंने किताब मेज पर रख उसे अन्दर बुलाया।

"नवीन, तुम नीचे नहीं रहते? वहाँ तो काफी भीड़ है।"

"सबको अपने-अपने सुख और भुलावे मुबारक। सम्भवतः उम्र का तकाजा है कि मुझे उपन्यास पसन्द हैं।"

मैं और कुछ ऐसी ही चुभती बातें कहने की सोच रहा था कि मुझे लगा

9665

कि मीना का अभिप्राय मेरे भाषण को सुनने का नहीं था। कुछ देर चुप्पी रही।

मैंने कहा, "विजय कल रात देहली चला गया है। जेके मामू उसे कुछ आवश्यक गुर बतलायेंगे, कुछ उपदेश देंगे।"

"नवीन, तुम्हें तो कोई बड़ा-बूढ़ा पसन्द ही नहीं आता।"

"कम से कम ऐसे बड़े-बूढ़े तो नहीं, जो अपने जीवनको सफल समझने का भ्रम रख सकें। जो अपने आपसे इतने संतुष्ट हों कि दूसरों को अपने से बनने की राह दिखलाया करें। यह तो तुम भी मानोगी कि यदि हम सब लोगों ने जीवन गलत न बिताये होते तो जिन्दगी में क्योंकर इतनी ज्यादती और दुःख होते।"

"तो तुम्हारा ख्याल है, विजय को नौकरी मिल जायगी।"

"हाँ, मैं तो यही सोचता हूँ।"

मीना मेरे सामने से हटकर मेरे पीछे की खिड़की पर चली गई।

"तुम्हें मालूम है नवीन, हम गुजराती लोग बहुत कट्टर होते हैं। पिताजी खाने-पीने में बहुत नियम बरतते हैं। यह सब अंधविश्वास नहीं है, इसमें बहुत कुछ होता है जिसे मैं और तुम नहीं समझ सकते।"

मैं क्या कहता, मुझे बहुत धीमें कुछ समझ में आ रहा था कि मीना क्या कह रही है।

"हाँ, हाँ।"

पर मीना इशारों तक रहने लायक सयानी नहीं थी। उसे अभी कहीं ज्यादा अधैर्य था।

"तुम लोग बंबई की बात सुनकर गलत समझते होगे। मरहठों और गुजरातियों में यही फर्क है। हमारे यहाँ सब माता-पिता की राय से होता है। हमारे यहाँ इन्टर-कास्ट विन्टर-कास्ट नहीं होती है।"

मैंने कहा, "हाँ, हाँ··"

मुझे जाने कब नींद आ गई। सवेरे बदन जकड़ा हुआ था और बुरी तरह से जुकाम, गले में दर्द। मेरी गाड़ी लखनऊ तड़के ही पहुँच जाती थी। बारात दिल्ली से सवेरे दस बजे तक पहुँचती थी। मैं सामान उतरवा कर, उस उनींदे कुली को वेटिंग रूम तक ले चलने को समझा रहा था। मेरी पीठ पर किसी

सज्जन ने थपथपाया। हाथ में गोल्ड-फ्लेक का डिब्बा लिये थे। चेहरा मोटा, बाल ऊपर को सँवारे हुए, कमर में कसे पैंट के दोनों तरफ निकलता हुआ हाड़। कुछ तो उस सुबह और जुकाम के मुहूर्त्त ने ही चिड़चिड़ा कर रखा था, मैंने घूमकर कहा, "कहिये!"

"आप कपूर साहब की बारात में आ रहे हैं। मेरा मतलब वर्मा साहब की तरफ से।" झूठ न बोल सकना भी एक मजबूरी है।

"जी हाँ, मैं विजय की तरफ से, विजय और दत्ता की शादी में सम्मिलित होने आ रहा हूँ।"

"हाँ हाँ! बड़ी खुशी हुई आपको पाकर। मैं शंकर हूँ," (उसने कपूर साहब के महकमें का नाम लिया) "मैं इंसपेक्टर हूँ। इस समय अगवानी-ड्यूटी पर।"

मैंने भी हाथ जोड़ दिये।

शंकरजी ने एक सूची को देखना शुरू कर दिया था। पन्ने पलटकर वह हमारे शहर पर पहुँच गया था।

"मेरा नाम नवीन है।"

"जी हाँ चलिये, आप विजयजी के खास दोस्तों में लिस्टेड हैं। आइये।"

मैंने एकाएक श्रीशंकर से हाथ बढ़ाकर पूछा, "क्या मैं खास दोस्तों की लिस्ट देख सकता हूँ।" उसमें एक-दो ही नाम सुने-सुनाये थे!

परिचय बढ़ने पर शंकर महाशय इतने नहीं अखरे। उन्होंने मुझ पर अपनी कारगुजारी पूरी कर ली थी। "जनाब देहरा एक्सप्रेस पर तो एक्साइज और सेल्सटैक्स इंसपेक्टर की ड्यूटी लगी है। मैं अपना क्यों सिर खपाऊँ।"

यदि मुझे पानी चाहिए होता तो वह मेरे कथन को ब्राडकास्ट करते थे और इस तरह धीरे-धीरे मुझे अत्यन्त खातिरदारी का अनुभव होने लगा। शंकर महाशय इस खातिरदारी में हाथ बटा रहे थे "सिगरेट आप नहीं पीते, अच्छा!" और वह अपने लिए सुलगा लेते थे।

"आप हमारे साहब को भी जानते हैं?"

"जी नहीं, मेरा मिस्टर कपूर से परिचय नहीं। मालूम होता है कि शादी काफी घूमधाम से हो रही है। मैं समझता था—आपको तो मालूम ही होगा कि

यह स्वयंनिर्धारित प्रेम की शादी है—कि शायद बड़े-बड़ों का सहयोग न मिले।"

शंकर महाशय हँस पड़े।

"आप बड़े प्रोफेसर आदमी मालूम होते हैं। फिर साहब आज के जमाने में क्या प्रेम की शादी, क्या तय की शादी। देना-दिवाना तो बारात को देखकर होता है। वर्मा साहब कायस्थ हों, पर वर्मा साहब की बारात क्या कपूर साहब एक टी सेट देकर टाल सकते हैं?"

"जी हाँ, जी हाँ! मैं भी सदा यह कहता आया हूँ। जात-पाँत पुरानी चीज है, आर्थिक वर्ग ही असली है।"

पर शंकर साहब का बहाव अब खुल गया था।

"साहब ने बुलाकर कहा, 'शंकर जरा देखो, यह लड़का गड़बड़ न कर दे।' मैंने साले को बुलवा कर कहा, दो महीने की छुट्टी लेकर घर हो आओ नहीं तो बंद कर देंगे। पर दो पैसे की देह वाले आपको हमेशा खोटे मिलेंगे। हेकड़ी! हेकड़ी जताने लगे।

"अरे साहब नहीं, यूनिवर्सिटी के मजनू साहबजादे! क्या आप नहीं जानते?"

शंकर महाशय का मुँह अपनी अचानक ना-समझी से घबरा उठा। पर मैं जानता था, विजय ने मुझे अपने प्रेम के बारे में बराबर चिट्ठियाँ लिखी थीं, "जिस तरह से मैं प्रेम में धोखा खा चुका हूँ, दत्ता भी अनुभवहीन नहीं है। दत्ता ने मुझसे नहीं छिपाया, मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी। मैंने भी मीना की बात बतला दी और हमारा खोया बचपना हमारे प्रेम में एक नवीन सूत्र बन रह गया है।...फिर बेवकूफी की प्रेम पत्र बाजी के सिवा उसमें कुछ था भी नहीं।"

मैंने शंकर साहब को अपने विश्वस्त होने का ढ़ाढ़स दिया। शंकर साहब ने फिर मुझे सिगरेट दिखा, अपने लिए जला कर कहा—

"जी हाँ, साहब, दो कौड़ी का लड़का था। गली-कूचे में मकान, हैं साले अनूप शहर के रईस, पर, साहब वही धोती-कुर्ता टाइप। रिश्तेदारी में घर आते-जाते थे, मिस साहब के साथ दो-तीन दफा सिनेमा हो आए, बस चढ़ गया दिमाग। वह धोतीबाज क्या कम्पटीशन में कभी आ सकता था?"

मैंने भाग्य सराहा कि मैं आज धोती पहने न था, "फिर क्या हुआ?"

"होता क्या, साहब मान गया। शराफत दिखाई, धमकाया, साहब ने खुद बुला कर बातें कीं, समझा दिया। कल के मजनू ! खुद सब चिट्ठियाँ दे गया। असली में अन्देशा कुछ नहीं था। साहब बेकार फिक्रमन्द हो रहे थे, वह दब्बू टाइप था, बदमाश टाइप नहीं।"

मैंने भी सहमत होकर कहा, "मुझे भी यह रोना-गाना, उलाहना देना समझ में नहीं आता। शरीफों की तरह से चुप बैठिये। वफा कोई हक तो है नहीं, जिस तरह से खुशी में दी जाती है उसी तरह खुशी में निभाई जाती है।"

शंकर महाशय ने सिगरेट मसल कर कहा, "सब बाम्बे टाकीज है।"

बारात फर्स्ट, सेकेंड, थर्ड तीनों क्लास से उतरी। विजय के पिता अपनी गोल टोपी पहने, हाथ में वही छड़ी लिये, मुझ देख सच में बहुत खुश हुए। बेचारे मेरे पीछे से लग गये। जेके मामू अविचल इन्तजाम उतरने-चढ़ने पर पूरी आँख रखे थे।

"भाई साहब आप यहाँ कोनों में छिपे घूम रहे हैं। आप की यहाँ जरूरत है।"

जेके मामू ने विजय के पिता को झिड़का, वे बेचारे मुझसे क्षमा याचना करते गये। दोपहर में विजय और मैं अकेले हो सके। वह बहुत थका हुआ था। कुछ देर तक हम लोग लेटे रहे। मैं सोच रहा था कि मैं क्या कहूँ। मैं विजय से गुस्सा भी नहीं था। वह कोई खास बदला नहीं था—उसको देखकर उस पर मुझे स्नेह पहले से कम नहीं हो रहा था।

"तुमने नहीं लिखा था कि घर वालों की अनुमति मिल गई। मैं तो उसी ख्याल से आया था।"

"हाँ जेके मामू को जोर लगाना पड़ा। नवीन, पिताजी की बातें समझ में नहीं आतीं, न माँ की। उन्हें दहेज का मोह नहीं, फिर भी पता नहीं क्यों मान नहीं रहे थे। उन्हें विजातीय होने का भी एतराज नया ही हुआ था, तुम्हें तो मालूम ही है, मीना के मामले में उनको एतराज नहीं था। माँ की बहू वाली बात में कुछ तथ्य हो सकता है, पर मुझे तो नौकरी में सदा घर से बाहर ही रहना है। छुट्टी मिलती कम है। फिर एक और बात है, दत्ता उनकी पूरी इज्जत करेगी। तुम तो जानते हो नवीन ये यूनिवर्सिटी में पढ़ी कुलीन लड़कियाँ किसी

को भी खुश कर सकती हैं। 'चार्म' की बात है, दत्ता समझदार है। उससे ज्यादा बरतन घिसने, चौका करने की बातें तो आज की कोई लड़की नहीं करती, चाहे घोर बनिया ही होती।"

"हाँ, और क्या ?"

मैं भी उस महलनुमा जनवासे के कमरे की छत देखने लगा। जुकाम की वजह से मुझपर एक दीर्घ नैराश्य सा छाने लगा था। हर पिता को अपने पुत्र को खोने को तैयार रहना चाहिये था। मैं विजय के पिता की बात सोचने लगा।

विजय ने पूछा, "मीना मिली थी।"

"नहीं ! हम लोगों ने मकान बदल लिया है, अब तो हम लोग नई बस्ती में रहते हैं। सुना है वह तो तभी से कहीं नौकरी पर चली गई है, उसके पिता भी शायद जाने वाले हैं। मुझसे एक ही बार मिले थे, तुम्हारे जाने के बाद।··· कह रहे थे गुजराती कट्टर होते हैं।"

"क्या होते हैं।"

"कट्टर होते हैं। यही रीत-रिवाज में।"

"हाँ मीना भी है असली में बहुत घरेलू टाइप। उससे नौकरी-वौकरी नहीं चलेगी, उसे तो शादी करनी चाहिये।"

तब ही जेके मामू ने झाँका। "विजय सोने की कोशिश कर लो, रात काफी देर हो जायगी रस्म में।"

मैंने उठकर कहा, "अब मुझे जरा बाजार जाना है।"

माँ से कह तो दिया था, लखनऊ में ले लूँगा, पर अब उपहार की समस्या बड़ी टेढ़ी मालूम पड़ने लगी। सच में मैं तो सदा किताब देता हूँ, क्योंकि उनके बारे में मुझे पहचान है। पर पचास-साठ की किताबें देता और श्रीमती विजय के लिए जिनकी ख्याति मैंने पिंगपोंग के खिलाड़ी होने की सुनी थी, जरा गलत मालूम पड़ता था। स्त्रियोचित चीजों में मेरा अनुभव था कि मेरी और अन्य लोगों की पसन्द अक्सर आड़ी पड़ जाती है। पिछले साल मैंने मंजू को भैया-दूज पर कुछ अच्छी साड़ियाँ दीं—अब के साल उनके किसी तरह परदे और कवर्स बना दिये गये हैं। वह तो कह रही थी कि साड़ियाँ रजाई के खोल लायक थीं। इसी कारण लखनऊ के बड़े बाजार में मैं अपना मानसिक द्वन्द्व लिये घूम रहा

था। काफी-हाउस में दरवाजे पर खड़ा हो एक प्याले के ऊपर मसले को सोचने की ठान ही ली थी कि उसी काफी-हाउस से निकलती मुझे मीना दीख पड़ी।

उसने मुझे देख लिया। अपने काले कायस्थ लगते अधेड़ साथी को एकाएक विदा किया।

"नवीन, तुम यहाँ कैसे? शादी में आये हो?"

"आओ मीना, काफी पिएँ, मुझे तुम्हारे मशविरे की जरूरत है। कुछ थकी लग रही हो।—तुम भी क्या—"

मीना मुस्कराई। "अनामंत्रित आ जाती? अरे नहीं, मैं अब नौकरी करती हूँ डिपार्टमेण्ट आफ टूरिज्म में। अपने डाइरेक्टर के साथ—श्रीवास्तव साहब जो साथ थे—लखनऊ कान्फ्रेंस में आई थी।"

"भाई मीना तुम लोग सब बड़े-बड़े आदमी होते जा रहे हो।"

मीना एशट्रे को घुमाती रही। मैंने कुछ घरवालों के बारे में सवाल पूछे, उसने उत्तर भी दिये। कुछ बात उधर घूमी नहीं।

एकाएक उसने पूछा, "तुम भी क्या नवीन, मेरी मजाक बनाया करते थे?"

"यह कैसा सवाल है मीना। मैंने तुम्हारा कभी मजाक नहीं बनाया। मेरे ख्याल में किसी को तुम्हारे मजाक बनाने की आदत नहीं थी।"

"हाँ उस मुफस्सल कालेज में तो और लड़कियाँ बिलकुल ही ठप्प थीं।"

"तुम अब क्या बहुत बदल गई हो?"

"तुम्हारा क्या अन्दाजा है?" उसने मेरे तरफ ऐसे मुँह किया जैसे मैं शीशा होऊँ।

"मेरे ख्याल में तो मीना तुम वैसी ही हो। थकी हो, चिन्तित हो। पर दोनों चीजें गुजर जाती हैं।"

मुझे उसका विचार में डूबना अच्छा नहीं लगता था। "सुनो मीना, मेरी एक मदद करो। मेरे-हमारे, एक मित्र का विवाह है। मुझे उपहार श्रीमती मित्र को देना है, तुम्हें मेरी पसन्द के अफसाने तो मालूम हैं ही। मतलब है एक साड़ी खरीद दो।"

मीना मुझे गड़ी आँखों से देखती रही। एक क्षण को लगा कि मैंने बड़ी भारी गलती कर दी है। "खैर, रहने दो। मेरे ख्याल में मित्र को ही सोच रहा

हूँ उपहार दे दूँ। हेयर ब्रश मूठ लगे मिल जायेंगे पचास-साठ में?"

मीना हँस पड़ी, "तुम्हारा कोई पार नहीं। हेयर ब्रश पचास-साठ में! लाओ मुझे दो पैसा, मैंने एक बहुत अच्छी साड़ी देख रखी है। लाओ।"

मैंने रुपये दे दिये। "तुम यहीं बैठो, मैं लल्लन जी के यहाँ से दौड़कर ले आती हूँ।"

काम से बचने की आदत माँ के अनुसार मेरी बचपन की ही है। एक और काफी मँगवा मैं विचारों में चहलकदमी करने लगा।

मीना सच में बदली नहीं थी। मुँह पर जमी धूल से जिस तरह किसी के चेहरे का रंग बदल जाए। पर मैं सोचने लगा क्या सच यह तो नहीं है कि मैं मीना को बदला मानना नहीं चाहता, भावुकता के वश। पर किसी असाधारण परिस्थिति में तो सब ही असाधारण लगते हैं।

दूसरा ख्याल आया। उपहार मीना ठीक खरीदेगी कि नहीं। मीना की खुद की पसन्द कोई विशेष तो थी नहीं। ऐसी ही चलती-चलाती-चटकीली। श्रीमती विजय तो पीढ़ियों के खुशहाल घरों से आ रही थीं। उन्हें ऐसी बातों का सूक्ष्म-ज्ञान जन्म से अनायास ही होगा। और मीना जी ने कहीं भावुकता दिखलाई तब तो भगवान ही जाने, क्योंकि भावुकता में लोगों की चुनाव-दृष्टि अंधी हो जाती है। जैसे अतिमात्र लगाव में लिखे प्रेम-पत्रों की भाषा की अनर्गलता।

मैं टेस्ट पर सोचने लगा। मन की वृत्ति जाहिर कर देता है। दत्ता और और मीना का फर्क ऐसी ही बातों से विजय पर प्रकट हुआ होगा। दत्ता को रेस्तराँ के ढंग, शराब पीने के नखरे और पति के प्रति ठीक श्रद्धा-अश्रद्धा रखने का मान आता होगा। ...मुझे लगा। बैरा भी मेरी ओर संशयपूर्ण नजर से उद्विग्न था। मैं बिल चुकाकर बाहर ही रुकने की सोच रहा था कि मीना लौट आई। एक भूरी सी सिल्क की साड़ी थी। बाकी पैसे उसने लौटा दिये।

मैं मीना को उसके डेरे तक छोड़ने साथ हो लिया। मैंने मीना से उसकी नौकरी के बारे में पूछा। वह खूब बतलाने लगी—डिपार्टमेन्ट, ड्रैफ्ट इत्यादि बातें यदि मैं ध्यान से सुनूँ तो पुरानी कमजोरी है, मुझे सर में दर्द हो जाता है।

मैं उचित स्थानों पर हूँ-हाँ करता गया ।

"नवीन, तुम सुन नहीं रहे हो ।"

"नहीं तो, फिर फ़ाइनेन्स ने फाइल वापिस कर दी, बुरा किया ।"

"मेरे ख्याल से तुम मेरे गाने को छोड़ कुछ कभी मेरी नहीं सुनते ।"

YWCA आ गया था । मैं विदा ले चुका था कि एकाएक मीना ने मेरे हाथ को पकड़ कहा, "तुम वहाँ नहीं जाओ । मेरे साथ रहो नवीन । मुझे बड़ा डर लग रहा है ।"

मैंने कुछ देर सोच कर मीना की बात मान ली । सच में मुझे खुद उस बारात के ख्याल से डर लग रहा था । आधा शहर, और मोटरों का कारवाँ जाने वाला था । पार्टी एक बड़े बाग में थी और आतिशबाजी और मुशायरे से हमारा मनोरंजन होने वाला था । विजय को तो जेके मामू के साथ रहना था, मुझे पूर्ण विश्वास था कि मेरा न होना सम्भवतः विजय के पिता ही जान पाते । उपहार तो विदाई के समय कल दिया जा सकता था ।

हम लोग समय काटने के लिए सिनेमा गये । पर कुछ मेरे और मीना के लिए महूर्त्त ही खराब थे अथवा किसी की बात को भुलाने और उससे भागने के प्रयत्न का साहचर्य सदा ही असन्तोषजनक होता है ।

सिनेमा रोने और टीबी के मरीजों के ड्युएट (duet) वाला निकला । हाल में भीड़ के नाम पर ऊपर वाली क्लास में हम ही थे । हॉल में ऐसी शान्ति जैसे किसी के देहावसान का जलसा हो । मीना आधे फिल्म में हॉल छोड़ना कमजोर चरित्र की निशानी समझती है । बात करना चाहते तो उस अँधेरे में किया मजाक उस मनहूसियत में सिकुड़ कर एक ओछी चेष्टा सा रह जाता । लौटने में हमारा रिक्शा ऐसी सड़क से निकला कि किसी शादी की आतिशबाजियाँ दीख पड़ रहीं थीं । हम दोनों चुपचाप देखते रहे पर दोनों का दृढ़ विश्वास था कि यह विजय की शादी की ही हैं । रेस्तराँ में खाने गये तो मीना को पहले भूख नहीं थी फिर डाल्डा का वहम शुरू हुआ । खैर उठ कर मिठाई वाले की दुकान पर गये । मीना कहने लगी बंगाली मिठाई सस्ती होगी और स्वास्थ्यकर, बाजार के दूसरे सिरे गये । संदेश बिक गये थे, संदेश ही मीना के प्रिय थे । साढ़े-ग्यारह बजे तक, घर जाने के समय मीना गुनगुनाने लगी कि उसे नींद कहाँ आएगी ।

में YWCA के अन्दर नहीं जा सकता था। पार्क में बैठे रहने को बहुत ठंड हो गई थी। दोनों एक दूसरे से खीझ चुके थे पर एक दूसरे को अकेले छोड़ने का निर्णय भी नहीं कर पाते थे।

मैंने जरा मजाक कर पूछा, "मीना मैं लोरी तो नहीं गा सकता। तुम्हारे लिए ब्रोमाइड् ला दूँ।"

"बस तुम्हारा दिमाग ऐसे ही चलता है। मैं एक गिलास भर गर्म दूध पी लूँ तो मुझे नींद आ जाए, झागवाला।"

फिर रिक्शा लिया, मीना को जैसा दूध चाहिये था वैसा शायद उत्तर प्रदेश के हलवाई नहीं बनाते। गुजरात में उसकी बातों से मालूम होता था कि हर एक ग्वाला एक मिल्क शेकर के किस्म की चीज रखता है। चौक में पंजाबी दुकानदार को मीना का मुँह मरोड़ना न रुचा और वह बिगड़ने लगा। मीना ने झाग बचा के अपना स्तर झुकाया और दूध पी लिया।

हम लोग फिर वापिस YWCA की तरफ चले। रास्ता अच्छा था, मीना गुनगुनाने लगी।

"मीना अगर तुम्हें अलापना है तो यहीं उतर लें। पुलिसवाला पकड़ लेगा ऐसे तो।" मीना अब जिद्दी की जगह भावुक बन रही थी।

"नवीन, रिक्शेवाले से कहो कि 'उस' सड़क से ले चले।"

"क्यों ?"

"ये सब सड़कें इतनी अँधेरी हैं, टिमटिमाती बत्तियाँ। कपूर साहब ने शायद शहर की सब बिजली भी बुक कर ली हैं।"

"वहाँ से गुजरें तो तुम जोर से गा उठोगी, इत्यादि-इत्यादि। मीना तुम्हें सिनेमा ले जाने की गलती नहीं करनी चाहिये थी।"

"नहीं, नहीं नवीन। प्लीज नवीन। मैं बिल्कुल चुप रहूँगी।"

मैंने नजफ खाँ रोड से चलने को कह दिया। मकान पहचाना जाता था, पेड़ों में बत्तियों का आयोजन बहुत सुन्दर था। पर अब बाहर चहल-पहल नहीं थी, सब लोग मण्डप में पीछे की ओर रहे होंगे।

मीना मुझसे सटकर बैठ गई थी। वह अपने वायदे के अनुसार बिल्कुल चुप रही। मुझे उसकी ओर देखने की हिम्मत नहीं हुई थी। जब शरीर की

सिहरन मालूम पड़ी तो देखा कि मीना रोने लगी थी।

YWCA पहुँच जाने पर मीना मेरी कुछ नहीं सुन अपनी उँगलियों से आँसू पोंछती रही, फिर एकदम मुड़ अन्दर भाग गयी। कुछ देर स्ट्रीटलैम्प के पास खड़े हो मैंने फिकर की, फिर थकावट के अनुभव में सब डूब गया। मैं लौट आया।

सवेरे मैं देर से उठा, जुकाम गजब का बढ़ गया था और माथे की तरफ एक लोहा-सा फँसा मालूम होता था। मैं मीना की तरफ जाने को तैयार ही था कि विजय से मुटभेड़ होगई। जनवासे में कोलाहल-सा हो रहा था, सब इधर-उधर जाते एक-दूसरे के रास्ते में पड़ रहे थे।

"कहाँ जा रहे हो? कल तो बाबूजी तुम्हें ढूँढ़ते ही रह गये। बिदाई जल्दी की है।"

पता नहीं क्यों, सम्भवतः जुकाम की झुँझलाहट की वजह मैंने सीधा जवाब दे दिया, "मीना से जरा मिलने जा रहा था।"

भगवान् जाने मैं कौन-सा भाव देखना चाहता था पर विजय बिल्कुल घबड़ा गया। कमरे के अन्दर ले गया।

"वह यहीं है? क्या कर रही है? कुछ पागलपन तो नहीं करनेवाली?"

मैंने उसे कुछ मीना के बारे में बतलाया। विजय को घबराहट ही हो रही थी।

"नवीन, क्या किया जाय? तुम उसी के साथ रहो। नवीन, तुम तो सब जानते हो, प्रेम कोई 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' तो है नहीं। कोरी वादे की खानापूरी न मुझे सुख देती, न उसे और न उसे मान्य ही होती। पर यह सब तो हो चुका है अब तो उसे दूसरों का लिहाज रखना चाहिए। मेरा नहीं दत्ता का तो रखे। उसने कुछ स्टंट कर दिया तो हम कहाँ मुँह दिखाने को रह जायेंगे। उसे ही क्या मिलेगा?"

"हाँ हाँ, पर विजय ऐसी कोई फिक्र की बात नहीं। मीना का उस तरह का कोई इरादा नहीं मालूम पड़ता।"

"तब भी नवीन, इन भावुक लोगों का कोई विश्वास नहीं। तुम बिदा हो जाने तक उसी के साथ रहो।"

मीना के डेरे पर पहुँच मालूम हुआ कि मीना चली गई है। मेरे नाम एक नोट था—"मैं डाइरेक्टर (और उसके परिवार) के साथ बरेली चली जा रही हूँ। एक दिन पहले पहुँचूँगी, वहाँ डिपार्टमेण्टल मीटिंग है। गुडबाई,—मीना।"

मैं बड़े बाजार आ एक काफीहाउस में बैठ गया। मेरा जिन्दगी से बिलकुल जी भर गया था। (कड़े जुकाम और बेकार की भागाभाग से ऐसा अक्सर हो जाता है)। दिल डुबाने वाले ख्याल आते रहे। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मैं असफल हूँ इत्यादि। कभी-कभी मीना का दुख होता, पर फिर सोचता कि ये एक-दो घन्टे किसी को सांत्वना दे देना क्या है? इससे ज्यादा तो मैं मीना को कुछ दे नहीं सकता था।

काफीहाउस से उठ किताबों की दुकानों में घूमता रहा।

जब मैंने जनवासे लौटने की सुध ली तो शाम हो रही थी। वहाँ पहुँच कर देखा तो कमरों में जमादार झाड़ू लगा रहे थे, बारात स्टेशन जा चुकी थी। एक वर्दी पहने नाराज ड्राइवर साहब ने आकर सुनाया, "सा'ब, बारात की गाड़ी छूटने का समय हो रहा है, आपका इन्तजार करते घन्टा हो गया।"

मैं उसे समझाना चाहता था, कि मुझे बारात का साथ निभाने की कोई इच्छा नहीं, क्योंकि मेरी गाड़ी तो नौ बजे जाती है।

"यह सब मैं कुछ नहीं जानता साहब। पर विजय साहब ने आपको लाने को बोला। कपूर साहब बिगड़ेंगे। आपका सामान मैं कार में लादे इन्तजार कर रहा हूँ।"

मुझे स्टेशन पर उतार ही उसे चैन हुआ।

टिकट की खिड़की पर मालूम हुआ कि बारात की गाड़ी जाने ही वाली है। हाथ में लिए उपहार के थैले के कारण टाल जाने के निर्णय को अलग करना पड़ा।

विजय मुझे डिब्बे के बाहर देख निकल आया।

"कुछ नहीं विजय खैरियत है। वह सबेरे ही चली गई थी।"

"थैंक गॉड! बात कुछ नहीं थी नवीन, पर फिर भी चिन्ता हो जाती है। भावुकता में कोई भी नासमझी किसी से भी हो सकती है।"

"हाँ, जब काम की बातें हों तो हमें भावुकता को बन्द कर देना चाहिये।"

क्या मैंने 'बन्द' कुछ शंकर महाशय के उच्चारण और उनके मानी से कहा था ?

"हाँ, सब अपनी-अपनी जगह पर ठीक हैं।"

मेरे और विजय के बीच बात करने को कुछ न बच रहा था। उसने मेरे हाथ के लिफाफे को छूकर कहा, "यह क्या है ?"

"अरे तुम्हारी श्रीमती के लिए माँ ने उपहार भेजा था। दे देना।"

"नहीं नहीं, तुम खुद ही दे देना। तुम दत्ता से मिले भी तो नहीं। आओ आओ शरमाओ नहीं।"

वहू की वेशभूषा में थी, इसलिए मैं कुछ दत्ता के विषय में नहीं कह सकता। गोरी थी, दुबली, और काफी बड़ी आँखें थीं।

विजय ने बड़े आयोजन से साड़ी निकाल दत्ता को दी। एक खुश बच्चे की तरह से उत्साह में—"लीजिए। नवीन, मेरे सब से बड़े मित्र, की तरफ से है जनाब तभी तो। वही साड़ी—लल्लनजी की शॉप विन्डो में—जिसने आपका जी चुरा लिया था।"

दत्ता साड़ी को शक से सहला जाँच रही थी।

विजय ने कहा, "नवीन, तुम्हें इतनी कीमती साड़ी खरीदने की क्या जरूरत थी। उपहार की वकत तो देने वाले से होती है।"

मैंने कहा, "क्यों मजाक करते हो, चालीस रुपये की साड़ी भी न देता। माँ ही नाराज होती।"

विजय जोर से हँसा और दत्ता ने इस तरह मुस्करा कर देखा जैसे मेरा धोखा देने का शिष्ट प्रयत्न बड़ा पसन्द आया हो।

———

उमर

"अरे तू इतना बड़ा हो गया पहिचाना ही नहीं जाता !" शीलाजी ने उसकी ऊँचाई भर को हाथ दिखलाया। "देखो, दादा" उन्होंने दूध के गिलास में मुँह डाले अपने बड़े भाई का ध्यान खींचना चाहा, "पहिचाना भी नहीं जाता।"

उसने शिष्टता से कहा, "पर शीलाजी, आप तो बिलकुल नहीं बदलीं।" वाक्य के पूरे कह जाने पर ही उसका मन डूबता हुआ दुहराने लगा "आप तो इतना बदल गईं कि मैं पहिचानना भी नहीं चाहता।"

कुछ तो उमर के दस साल थे। चेहरा हड्डियों पर खिंच आया था, लगता था जूड़े में कम बाल हैं, देह से समृद्धि जा चुकी थी, पर उससे ज्यादा उनकी बातचीत थी। एक क्षीण आवरण कि उनका जीवन ऊबा, उद्देश्यरहित नहीं है।

उसने पूछा, "आप अच्छी हैं !"

"हाँ भई अपने राम तो अच्छे ही रहते हैं। खराब होने की फुर्सत किसे है। दिन में कालेज, फिर घर का काम। मैं और दादा, दो आदमी हैं पर सैकड़ों चीजें निकल आती हैं। अपने राम तो अपनी छोटी सी दुनिया में मगन रहते हैं।"

उसे शीलाजी की दुनिया दिखलाई दी। शाम को शायद शीलाजी बागवानी करती होंगी, घर के आगे चार-पाँच कदम पर गेंदे के बहुत से फूल थे। क्या 'अपनेराम' का स्त्रीलिंग में भी प्रयोग हो सकता है?···घर के काम ! दादा ने तन्मयता से टोस्ट को दूध में भिगो खाना शुरू कर दिया था।

दादा के सामने मिठाई करते हुए उसने कहा, "लीजिये"। बड़ों की कमजोरियों पर उदार होना कितना कठिन है !

"जीहाँ, जीहाँ, आप लीजिये।"

शीलाजी ने कहा, "सुना है तेरी शादी नीलिमा से तय हो गई है, रे।"

"अफवाह, मुझे शादी की कोई जल्दी नहीं है," उसने प्रार्थना की कि

शीलाजी उससे 'तू' और 'रे' न कहें। इतना स्नेह उनके बीच नहीं था और उसके बिना ये चेष्टाएँ दयनीय लगती थीं।

उसने हँसकर कहा, "आप नहीं करेंगी शादी ?"

हँस भर देने की बजाय शीलाजी उत्तर देने लग गईं।"भई अपने राम तो जिन्दगी भर के लिए तय हो गये हैं। अपनी छोटी सी दुनिया है।···शादी में बहुत 'एड्जेस्टमेन्टस्' की आवश्यकता है—हमसे नहीं हो सकते। यदि आप स्वभावतः उस तरह न हों तो किसी के साथ रहना आसान नहीं है।"

दादा चौथी रसमलाई को भी चमचे से उठाने की कोशिश कर रहे थे। शीलाजी ने सख्ती से कहा, दादा अब बस करो ! रात को पेट में जलन होगी। शीलाजी ने दादा के व्यवहार पर लज्जा प्रतीत की।

दस साल पहले वह आठवीं जमात में पढ़ता था। पिताजी की शिलांग बदली होने के कारण उसे 'भाई साहब' के पास भेज दिया गया था। भाई साहब उसके चचेरे भाई थे और घराने में उनकी बुद्धि का आदर था। वे एम० ए० फाइनल का इम्तिहान देने वाले थे। उसे इस नए घर की स्वतंत्रता बहुत भायी। घर में माँमू थे जो जूलॉजी में रिसर्च कर रहे थे, चाचा थे जो एम. एस-सी० प्रीवियस दुबारा दे रहे थे, गिरधारी नाम का एक रसोइया था और महरी नाम की एक महरी।

फिर उसे भाई साहब से बहुत स्नेह हो गया। उनका कमरा किताबों से ऊबड़-खाबड़ भरा था। मामू को जोर-जोर से हँसना पसन्द था—एक बड़ी हँसी की रील सी खुल जाती थी। चाचा सीटी बजाते थे और अपनी चीजें करीने से जरा अलग रखते थे। पर भाई साहब हमेशा किताबों पर गड़े रहते थे, या अपनी लड़कियानी आवाज में उत्तेजित हो बहस करते थे। कोई भी उनसे बहस कर सकता। उसने खुद ही एक दिन ध्यानचंद की चर्चा छेड़ी तो दूसरे दिन भाईसाहब लाइब्रेरी से एक मोटी इन्साइक्लोपीडिया ले आये।

भाईसाहब का सबसे बड़ा गुण था उनकी उदारता। यदि उसे लम्बे बाल पसन्द थे तो वह नाई से नहीं कहते थे कि "इसके बाल जरा छोटे करना आगे से।" उसे फल नहीं पसन्द थे, वह न खाए। यदि दो-तीन दफा कहने के बावजूद वह खाट में लेट कर कर पढ़ता रहा तो भाई साहब अपनी आज्ञा को

भूल सा जाते। वह उसके दोस्तों को गली से गुल्लीडंडा खेलने वाले लड़के कह कर नीचा नहीं दिखलाते थे।

सब काम एक बेतकल्लुफी से होता था। सुबह जब सब उठ गये तो चाय की पुकार हुई। कम्बल लिए भाई साहब के कमरे में आ गए। (चाचा बिना दाँत माँजे पानी भी नहीं पीते थे और इस वजह हमेशा उनकी चाय दूसरी केतली में से बनती थी। उन्हें चीनी ज्यादह-कम का भी खयाल था) बाहर पड़ा अखबार उसे जाकर लाना पड़ता था। माँमू को सिर्फ सिनेमा और लोकल पेज से मतलब था। भाई साहब लड़ाई की खबर पर गम्भीर विचार प्रकट करते। वह और माँमू जब हिटलर की अजेयता के बारे में भविष्यवाणियाँ करते तो भाई साहब यहूदियों पर की हुई क्रूरता घृणा की मुद्रा बना कर बतलाते।

शीलाजी का नाम अक्सर बातचीत में उठ जाया करता था। ऐसे मौकों पर चाचा कहना न भूलते, "तुम जरा चले जाओ, तुम्हारी उमर की बात नहीं हैं।" शीलाजी चाचा की रिश्तेदार होती थीं, तथा भाईसाहब की सहपाठिनी। उनकी कोई नई बात भाईसाहब शरमाते हुए सुनाते। मामू की हँसी खुल जाती या उनकी सस्ती शायरी। चाचा की सख्ती के बावजूद वह शीलाजी के रहस्य से अनभिज्ञ न रहा। छुट्टियों के दिन चाचा और मामू तो सिनेमा में गायब रहते। भाईसाहब बरामदे में ही बिछा अपनी किताबें फैला लेते। नीचे आँगन में वह हाकी की नई ढंगकी 'कैरी' की प्रेक्टिस करता।

भाई साहब बुलाते, "इधर आओ, तुम्हें कविता सुनाऊँ।"

वह महरी के बर्तनों में जोर से गेंद मार कर, शिष्टता में आ पास खड़ा हो जाता। उसे साहित्य में तो रस जासूसी उपन्यासों में ही मिलता था कविता के एप्रीसिएशन में इतना ही क्लास में सीखा था कि संदर्भ जरूरी होता है, नम्बर मिलने के लिए टिप्पणी लिखनी चाहिए। "सुनो, मैंने अभी लिखी है।" कविताएँ 'तुम्हारी' स्मृति के एकाएक आ जाने से विह्वल हो जाने की गाथा गाती थीं। अपनी समझ दरसाने को वह कहता, "क्या इसमें कवि प्रकृति को रहस्य रूप में देख रहा है अथवा वह भक्ति-मार्ग का अनुयायी है।"

भाई झुँझलाते नहीं बल्कि रहस्यवाद और भक्तिमार्ग के बारे में समझाने लगते। कविता की कापी भूल जाती।

दिसम्बर में चाचा की एक ताई माघ नहाने उनके घर आकर टिक गईं। उनके घर ऐसी बुआ-ताई आती रहतीं थीं, पर उन लोगों का, खास तौर से भाईसाहब का, ध्यान नहीं बँटता था। दूसरे दिन उसने अचरज से देखा कि आठ बजे हिला-हिला कर उठनेवाले भाईसाहब को तड़के गंगास्नान में विश्वास हो गया है। वह नंगे पैर ताई के साथ निकल गये थे।

अगले इतवार उनके घर शीलाजी आईं। चाचा की ताई शीलाजी की बहुत निकट सम्बन्धी थीं। वह हॉकी पर बॉल बैलेंस किए मकान में घुसा कि देखा घर में बदामी रंग का शाल ओढ़े एक आगन्तुक है जो कि गंगा नहाने वाली ताई की अंगीठी की दूसरी तरफ बैठी थीं और चाय लेने को मना कर रही थीं।

"नहीं, नहीं, चाची, मैं तो एक प्याले से ज्यादा कभी पीती ही नहीं। दूसरा पीने पर मुझे रात को नींद नहीं आती।"

बरामदे में अभी बत्ती नहीं जली थी। अँगीठी के धधकते कोयलों की आँच की रोशनी में उसने शीलाजी का मुख देखा। भाई साहब खंभे से लगे चाची और भतीजी को देख रहे थे।

"कितनी ठंड है, मेरी तो उगलियाँ ही नहीं खुलतीं।" शीलाजी ने अँगीठी के ऊपर अपनी मुट्ठियाँ खोलीं।

फिर अक्सर छुट्टियों में वह एक दूसरा दृश्य देखने का आदी हो गया। बरामदे में एक तरफ बूढ़ी ताई बैठी अपना हिसाब लिखती रहती थीं और भाई साहब की किताबों भरी चटाई रहती दूसरी तरफ बादामी रंग के शाल में लिपटी शीलाजी। भाईसाहब उन्हें अपनी लड़कियानी उत्तेजित आवाज में कुछ समझाते रहते, समझाते रहते तब भी जब शीलाजी का ध्यान धूप के नशे में गुम हो चुका होता।

"आप सुन रहीं हैं?"

"हाँ हाँ इस धूप में कैसा आलस बरसता है—दिमाग देह पर।" उनकी उंगलियाँ किताबों के ऊपर रखी बेला की ढेरी से खेलने लगतीं।

शीलाजी उनके घर एक रात भी रहीं थी। शाम को घमासान बारिश होने लगी जो अँधियाला चढ़ आने पर भी कम न हुई। गिरधारी और वह रिक्शों में भीगते शीलाजी की अर्जी लेकर वीमेन्स हॉस्टल गये। वहाँ उनकी पुकार का सुध लेनेवाला ही कोई नहीं था। आफिस में अँधेरा था। एक माली का लड़का बड़ी

भूल सा जाते। वह उसके दोस्तों को गली से गुल्लीडंडा खेलने वाले लड़के कह कर नीचा नहीं दिखलाते थे।

सब काम एक बेतकल्लुफी से होता था। सुबह जब सब उठ गये तो चाय की पुकार हुई। कम्बल लिए भाई साहब के कमरे में आ गए। (चाचा बिना दाँत माँजे पानी भी नहीं पीते थे और इस वजह हमेशा उनकी चाय दूसरी केतली में से बनती थी। उन्हें चीनी ज्यादह-कम का भी खयाल था) बाहर पड़ा अखबार उसे जाकर लाना पड़ता था। माँमू को सिर्फ सिनेमा और लोकल पेज से मतलब था। भाई साहब लड़ाई की खबर पर गम्भीर विचार प्रकट करते। वह और माँमू जब हिटलर की अजेयता के बारे में भविष्यवाणियाँ करते तो भाई साहब यहूदियों पर की हुई क्रूरता घृणा की मुद्रा बना कर बतलाते।

शीलाजी का नाम अक्सर बातचीत में उठ जाया करता था। ऐसे मौकों पर चाचा कहना न भूलते, "तुम जरा चले जाओ, तुम्हारी उमर की बात नहीं हैं।" शीलाजी चाचा की रिश्तेदार होती थीं, तथा भाईसाहब की सहपाठिनी। उनकी कोई नई बात भाईसाहब शरमाते हुए सुनाते। मामू की हँसी खुल जाती या उनकी सस्ती शायरी। चाचा की सख्ती के बावजूद वह शीलाजी के रहस्य से अनभिज्ञ न रहा। छुट्टियों के दिन चाचा और मामू तो सिनेमा में गायब रहते। भाईसाहब बरामदे में ही बिछा अपनी किताबें फैला लेते। नीचे आँगन में वह हाकी की नई ढंगकी 'कैरी' की प्रैक्टिस करता।

भाई साहब बुलाते, "इधर आओ, तुम्हें कविता सुनाऊँ।"

वह महरी के बर्तनों में जोर से गेंद मार कर, शिष्टता में आ पास खड़ा हो जाता। उसे साहित्य में तो रस जासूसी उपन्यासों में ही मिलता था कविता के एप्रीसिएशन में इतना ही क्लास में सीखा था कि संदर्भ जरूरी होता है, नम्बर मिलने के लिए टिप्पणी लिखनी चाहिए। "सुनो, मैंने अभी लिखी है।" कविताएँ 'तुम्हारी' स्मृति के एकाएक आ जाने से विह्वल हो जाने की गाथा गाती थीं। अपनी समझ दरसाने को वह कहता, "क्या इसमें कवि प्रकृति को रहस्य रूप में देख रहा है अथवा वह भक्ति-मार्ग का अनुयायी है।"

भाई झुँझलाते नहीं बल्कि रहस्यवाद और भक्तिमार्ग के बारे में समझाने लगते। कविता की कापी भूल जाती।

दिसम्बर में चाचा की एक ताई माघ नहाने उनके घर आकर टिक गईं। उनके घर ऐसी बुआ-ताई आती रहतीं थीं, पर उन लोगों का, खास तौर से भाईसाहब का, ध्यान नहीं बँटता था। दूसरे दिन उसने अचरज से देखा कि आठ बजे हिला-हिला कर उठनेवाले भाईसाहब को तड़के गंगास्नान में विश्वास हो गया है। वह नंगे पैर ताई के साथ निकल गये थे।

अगले इतवार उनके घर शीलाजी आईं। चाचा की ताई शीलाजी की बहुत निकट सम्बन्धी थीं। वह हॉकी पर बॉल बैलेंस किए मकान में घुसा कि देखा घर में बदामी रंग का शाल ओढ़े एक आगन्तुक है जो कि गंगा नहाने वाली ताई की अंगीठी की दूसरी तरफ बैठी थीं और चाय लेने को मना कर रही थीं।

"नहीं, नहीं, चाची, मैं तो एक प्याले से ज्यादा कभी पीती ही नहीं। दूसरा पीने पर मुझे रात को नींद नहीं आती।"

बरामदे में अभी बत्ती नहीं जली थी। अँगीठी के धधकते कोयलों की आँच की रोशनी में उसने शीलाजी का मुख देखा। भाई साहब खंभे से लगे चाची और भतीजी को देख रहे थे।

"कितनी ठंड है, मेरी तो उगलियाँ ही नहीं खुलतीं।" शीलाजी ने अँगीठी के ऊपर अपनी मुट्ठियाँ खोलीं।

फिर अक्सर छुट्टियों में वह एक दूसरा दृश्य देखने का आदी हो गया। बरामदे में एक तरफ बूढ़ी ताई बैठी अपना हिसाब लिखती रहती थीं और भाई साहब की किताबों भरी चटाई रहती दूसरी तरफ बादामी रंग के शाल में लिपटी शीलाजी। भाईसाहब उन्हें अपनी लड़कियानी उत्तेजित आवाज में कुछ समझाते रहते, समझाते रहते तब भी जब शीलाजी का ध्यान धूप के नशे में गुम हो चुका होता।

"आप सुन रहीं हैं?"

"हाँ हाँ इस धूप में कैसा आलस बरसता है—दिमाग देह पर।" उनकी उंगलियाँ किताबों के ऊपर रखी बेला की ढेरी से खेलने लगतीं।

शीलाजी उनके घर एक रात भी रहीं थी। शाम को घमासान बारिश होने लगी जो अँधियाला चढ़ आने पर भी कम न हुई। गिरधारी और वह रिक्शों में भीगते शीलाजी की अर्जी लेकर वीमेन्स हॉस्टल गये। वहाँ उनकी पुकार का सुध लेनेवाला ही कोई नहीं था। आफिस में अँधेरा था। एक माली का लड़का बड़ी

कठिनाई से मिला और वह भी चिट्ठी से ऐसा डरता हुआ जैसे वह अर्जी न होकर अदालती सम्मन हो।

बिस्तर बाँट-छाँट कर शीलाजी का बिस्तर उसके कमरे में बिछा दिया गया था। वह भाईसाहब के कमरे में एक खटोले में लेटा। ग्यारह बजे रात तक भाईसाहब बदल-बदल कर किताबें पढ़ते रहे, उन्होंने उससे दो बार पूछा कि बत्ती जली रहने पर उसे आपत्ति तो नहीं। वह शिष्टता में नहीं कर करवटें बदलता रहा।

बहुत गई रातको उसकी नींद एक दफा खुली। बारिश रुक चुकी थी। भाई साहब सीकचों से लगे, खिड़की को अपने आकार से करीब भरते हुए पीले चाँद को देख रहे थे जैसे एक बन्दी अपनी मजबूरी में जकड़ा स्वतन्त्रता को देख रहा हो।

जाड़े की छुट्टियाँ खत्म हो गईं। चाचा और मामू लौट आये, गंगावाली ताई हाथरस लौट गईं।

इम्तिहान के दिन आ गये थे। हीटर ठीक करा लिया गया था, समय बेसमय रात को चाय बनती थी। चाचा ने दाढ़ी बनाना छोड़ दिया। भाई साहब चुप रहने लगे। हिटलर को ले बहस न होती।

फरवरी में चाचा का जन्म दिवस पड़ता था। मामू की राय हुई, "चाचा का जन्म दिवस मनाया जाय। शीलाजी को बुलाया जाय।" शीलाजी का लिखा जवाब आ गया कि वह न आ सकेंगीं। उस दिन चाचा बुलाने भी गये पर खास खरीदी केक मिटाइयाँ मामू, उसने और गिरधारी ने ही खाईं।

गर्मियों की छुट्टियों में माँ से उसने अपना पहला प्रौढ़ सवाल पूछा, "यह शीलाजी और यह भाई साहब की शादी होगी?" माँ ने सिलाई की मशीन से सर नहीं उठाया। "पागल हो गया है। शीला तुम्हारे भाईसाहब से चार साल बड़ी है। कहीं तुम्हारी चाची ने यह बात सुन ली तो जहर खा मरेगी।"

× × × ×

दरवाजे पर बिदा लेते उसने न जाने क्या सोच पूछ डाला, "शीलाजी अब भी आप दूध-मलाई से मुख धोती हैं।"

"नहीं तो, मैं तो कभी नहीं धोती थी। किसने कहा?"

"कुछ नहीं, मन में ऐसे ही झूठी-सच्ची बातें रह जातीं हैं।"

निराशा

सरला और कमला की दोस्ती उन दोनों के घरों में प्रसिद्ध थी। सरला की भाभी शोलापुर से ब्लाऊज पीसेज लाईं तो एक सरला, एक कमला के लिए। बनारस से कमला के भाई ने इंगूरदान भेजे एक कमला एक सरला के लिए। क्लास के लड़के इतवार के सवेरे के शो में, दोनों को साथ देखने के आदी थे। दोनों ने एम० ए० पास कर लिया था, यह जोड़ा न टूटा।

सरला कद में कमला से छोटी थी, चपल थी, रंग सांवला था। आँखें बड़ी-बड़ी। बातें करने में, चेहरा और हाथ भी भाग लेते थे। उसकी बुद्धिमानी पर कमला को पूरा विश्वास था। कमला सब कुछ धीरे दुहरा कर करती थी, चलना, बोलना, सोचना, लिखना। रूप तो नहीं पर कमला का गोरा रंग और मीठा सा मुखड़ा था। अभी तक दोनों कुँवारी थीं हाँलाँकि बीसवीं वर्षगाँठ मनाए तो दोनों को तीन-चार साल हो गये थे। उनसे कम रूपवती, कम धनवान घरों की कन्या के विवाह के निमन्त्रण आए-गए पर ये हिलस्टेशन के रिश्तेदारों के घर, अविवाहित ही घूमती रहीं।

कमला की शादी न हो सकने का कारण सम्भवतः यूनिवर्सिटी के जमाने की एक दुर्घटना थी। बी० ए० में उसकी क्लास के एक लड़के ने उससे लैला-मजनूँ मान-न-मान-मैं-तेरा-मेहमान प्रीत बाँधी थी। साधारण रिक्शे का पीछा करना और डाक विभाग को मोटी-मोटी चिट्ठियों से तंग करने तक ही बात न रही थी। लड़का शायर था और उसने एक नज्मों की किताब छपा डाली जिसकी सम्बोधित प्रेमिका के बारे में कोई शक न रह सकता था। प्राक्टर के हुकुम से किताब जब्त हुई—उसे धमकाया समझाया गया—कमला ने भी। आँखों में आँसू भर बहिन भाव निभाने का वचन दिया। दूसरे दिन वह लड़का अपने कमरे में धतूरा खाए बेहोश मिला। मरा भी नहीं—हास्पिटल में ठीक होते-होते पाकिस्तान भाग गया।

सरला यदि कम गुणवान होती और उसे अपने व्यक्तित्व पर कम गर्व होता तो उसकी शादी हो सकती थी। दुकान पर बैठने वाले, सम्मिलित कुटुम्ब वाले खानदानी रिश्ते उसे मान्य नहीं थे और जो विरले लड़के अपर मिडिल क्लास के अफसर वर्ग में आते वे छिछली, खरचे के अनुसार, गुड़ियों को वर लेते। कालेज में गुजरे वर्ष और डिगरियाँ उसकी शत्रु होने लगीं।

सरला देहली में डिफेंस मिनिस्ट्री में रिसर्चर नियुक्त हो गई। और कुछ महीने बाद कमला भी लखनऊ के महिला कालेज में लेक्चरार बन गई। हर बुधवार और शनिवार को सरला की चिट्ठी आती थी; कमला के भी सप्ताह में दो उत्तर दिल्ली चले जाते थे।

सरला की चिट्ठियों में एक मिस्टर नाग का उल्लेख होने लगा। वे फाइनेन्स सेक्शन में थे। मिस्टर नाग भी करौल बाग में रहते थे और आने की बसें भी सरला और मिस्टर नाग की धीरे-धीरे एक होने लगीं। सरला ने जब पहली दफा मिस्टर नाग के साथ सिनेमा देखने का लिखा तो उत्तर में कमला ने व्यवहार बुद्धि की विख्यात बातें दुहराना अपना कर्त्तव्य माना।

दिसम्बर में सरला दिल्ली से छुट्टियों में लखनऊ आई।

कमला के मिस्टर नाग के बारे में सवालों की बौछार पर सरला मुस्कराकर, "अरे कुछ नहीं—पागल हो रही हो—चुप रहो वर्ना मैं जमील की चर्चा छेड़ दूँगी" इत्यादि बचाव लेती रही। फिर हँसकर' ' 'मानती हुई सरला ने कहा, "मैं क्या बतलाऊँ कैसा है कैसा नहीं है। मुझसे ऐसे वर्णन नहीं किया जाता। कल लखनऊ आ रहा है—खुद देख लेना।"

कमला ने अचम्भे में आकर कहा, "लखनऊ आ रहा है !! मुझे बतलाया भी नहीं। कितने दिन के लिए आ रहा है।"

"लखनऊ रुकने नहीं आ रहा। सुधीन्द्र का तबादला कलकत्ते होगया है। दिल्ली से सीधे जाने के बजाय लखनऊ से घूमते जाना उसने तय किया है।"

"और लखनऊ से क्यों घूमते जाँयगे ये सुधीन्द्र नाग ?" कमला ने आँखें नचाई।

"भई मुझे क्या मालूम। उसे कुछ काम हैं। उसे कुछ बातें करनी हैं,

अगली गाड़ी से चला जाएगा।"

"और सरला शायद तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि ये बातें किससे करनी हैं।"

देहली से मेल आने के समय से आध घंटे पहले से कमला और सरला प्लेटफार्म की चहलकदमी कर रही थीं। कमला को भी कम उत्तेजना नहीं थी। सरला की शादी की बात पास आ गई यह उसे उत्साहित किये थी—ईर्ष्या की मरोड़ नहीं जगी थी।

सरला चुप होती जा रही थी। उसकी मुट्टी कमला पर और कस कर बंधती जा रही थी। सरला के हृदय में आशंका के घिरे बादल थे। पति को तो एक दिन आ डोले में ले जाना चाहिए—एक तय दिन, जिस दिन न आने पर पति की ही मान-हानि और निन्दा हो। वाग्दत्ता को भले धोखा हो जाय, यह संशय तो नहीं होना चाहिए कि वह वाग्दत्ता है भी कि नहीं। वह बार-बार स्मृति में रखना चाहती थी कि सुधीन्द्र उससे प्रेम करता है पर बार-बार इसे कतराकर सुधीन्द्र का विवाह के बारे में निरुत्साह याद आ जाता। सुधीन्द्र के लिए उनके सम्बन्ध का युवावस्था-की-सबसे-सुखद स्मृति बन बचा रहना सबसे सर्वोत्तम था। विवाह तो व्यवहार जगत की भोंडी बात है जिसे व्यवहार जगत की मोटी-मोटी परिस्थितियाँ ही सम्हालें। सरला को अपना परिश्रम याद आता जिसमें अनजाने लगते ही उसने सुधीन्द्र का निश्चय मोड़ा था। प्लैटफार्म पर टहलते, गाड़ी की राह तकते सरला का दिल डर से भर जाता। दो दिन सुधीन्द्र दिल्ली अकेले रह गया है, फिर यदि वह आज लखनऊ से अछूता निकल जाए तो सम्भवतः कलकत्ते जा हमेशा के लिए सरला उसे खो देगी।

इंजिन की बत्ती मोड़ पर चमकी, प्लेटफार्म जाग-सा गया और दूसरे ही क्षण मेल भड़भड़ाती हुई स्टेशन पर आ गई।

कमला सरला के साथ फर्स्टक्लास के डिब्बों की तरफ झपटी। पहले में कुछ मारवाड़ी और एक फौजी थे। दूसरा काले बुर्कों से तंग था, सामान इतना कि जैसे पाकिस्तान ही सवारी कर रहा हो। कमला डिब्बे को देखते पीछे छूट गई, सामान उतरवाते नौजवान को कहना पड़ा, "जरा सामान के लिए

रास्ता दीजिये" । कमला सरला के पीछे दौड़ी । सरला अगले बाकी तीन डब्बों को ढूँढती आगे बढ़ गई थी । कमला भी गाड़ी के पीछे की ओर बढ़ी ।

"कमला आ जाओ, पीछे कोई डिब्बा नहीं है । मैं देख आई ।"

कमला को सरला से आँख मिलाने की हिम्मत न हुई ।

"सरला देखो कहीं भीड़-भाड़ में वह निकल न गया हो । कन्डक्टर गार्ड से लिस्ट देखकर पूछ लें ।"

"अरे चलो ।"

पर कमला ने सरला को बाध्य किया ही । बुक्ड सामान उतरवाते कन्डक्टर गार्ड महाशय मिले ।

"देखिये मि० नाग के नाम दिल्ली से लखनऊ का रिजरवेशन था, इसी ट्रेन से । फर्स्ट क्लास ।"

गार्ड जमादार से झक-झक कर रहा था । उसने सूची सरला को थमा दी । सूची में बहुत नाम थे पर सुधीन्द्र नाग नहीं था । अपना-अपना प्लेटफार्म टिकट दे, दोनों लड़कियाँ बाहर आ गईं । रिक्शे तक बैठने में किसी को कुछ सूझा तक नहीं कि क्या कहा जा सकता है । सरला को थकावट लग रही थी । उसने आँख बंद करके कहा, "सुधीन्द्र का नाम ही निकल जाता तो कुछ तसल्ली होती । ये नाम भी क्या अजीब चीजें हैं । सूची में कमला, जानती हो एक नाम था जमील हसन ।"

कमला ने उत्तर दिया, "हाँ मैंने जमील को देखा । उसने कहा, जरा सामान के लिए रास्ता दीजिये ।"

स्वयंवर

मैं लिली को करीब दस साल से जानता हूँ, और वह दस साल से मुझे भोंदू समझती है। मैं नैनीताल में कालेज में पढ़ता था, उस भरपूर लड़कों के कालेज में लिली साइंस सेक्शन में खास अनुमति ले भरती हुई। पिता नैनीताल वन-विभाग में उच्च अधिकारी थे और लड़की को साइंस पढ़ने की जिद थी, जिसका इन्तजाम लड़कियों के कान्वेन्ट में नहीं था। कोआर्डिनेट ज्योमेट्री की कई थ्योरम्स मैंने उन्हें समझाई और प्रैक्टिकल में मदद की। नतीजा निकलने पर लिली हमारे क्लास में फर्स्ट आई, प्रान्त में लड़कियों में उसकी पोजीशन भी थी। तब ही से लिली की प्रतिभा और विलक्षणता का मैं कायल हो गया।

मैं इलाहाबाद में उसके लखनऊ विश्वविद्यालय पर ढाए अत्याचार सुनता रहा। कार चलाती थी, स्लीवलेस ब्लाउज पहिनती थी, उसकी फोटो ईवॅस वीकली के कवर पर छपी थी। यह भी सुना कि लिली बम्बई अभिनेत्री बनने चली गई, फिर सुना कि हीरो से असंतुष्ट हो वह बम्बई से लौट आई है।

मैं फौज में भर्ती होकर बुरी आदतों में पड़ गया। नैनीताल के क्लब में आ ब्रॉन्डी पी रहा था कि मुझे अपने अविरल प्रलाप से परास्त करतीं मिसेज थापा ने सख्त अंदाज से कहा, "लो देखो आज फिर !"

"आज फिर क्या ?"

"आज फिर श्रीवास्तव-स और सिन्हा-स साथ बैठे हैं।"

"तो क्या हुआ !"

"मिसेज सिनहा को ब्रिज से नफरत है, श्रीवास्तव तो ठर्रा भी पी जाए, मिसेज श्रीवास्तव को घरमें हजार काम होंगे और सिनहा ने अभी लाऊँज के सब अखबार नहीं पढ़े हैं।"

"मेरे ख्याल से मिसेज थापा, बात यह है कि आज मेजर थापा को घर से

आने में देर हो गई है। आपको सब बातों से आपत्ति है।"

"स्टुपिड ! तुम्हारी लिली और श्रीवास्तव के लड़कों की शादी तय हो रही है। सवाल यह है कि किससे। धीरेन्द्र बड़ा है, रेल्वे एकाउन्टस में, सुरेन्द्र छोटा है आडिट एण्ड एकाउण्टस में।"

"मिसेज थापा कृपया आप लिली को 'मेरी लिली' न कहें। लिली की बात कह रही हैं, वह उससे शादी करेगी जिससे उसका मन हो। वह भरपूर लड़कों के कालेज में अकेली···।"

"बन्द करो अपना लिली फिक्सेशन। सवाल यह है सही कि लिली का मन किस पर करेगा। दोनों सेंट्रल सर्विसेज में हैं।"

मैंने असम्भव के सामने सर झुकाते पुकारा, "एक छोटा ब्रैन्डी। नीट।"

दूसरे दिन लिली भी लखनऊ से आ गई। सच में उसके साथ धीरेन्द्र और सुरेन्द्र छाता-बरसाती सम्हाले क्लब आए। धीरेन्द्र जरा चौड़ा दीखता था पर उसका चेहरा बड़ा मुलायम और भोला था। सुरेन्द्र दुबला और लम्बा था, उसकी गहरी आँखें थीं और मोटे होंठ। बातचीत सुनते ही भाई जाने जाते थे; वही पूर्ण अविचल आत्म-तुष्टि सुनाई पड़ती थी।

लिली मिली, मुझसे एक ही क्षण, पर इस भाव से कि गुजरे चार सालों में उसे मेरा अक्सर ध्यान आया हो।

ब्रैन्डी की ओर इशारा कर उसने कहा, "यह कश्मीर में सीख आए ?"

"हाँ, और भी नई बातें।"

"क्यों, पुरानी बातों से क्या मन भर गया ?"

मैं कुछ कहने ही वाला था कि लिली के पीछे सुरेन्द्र आ खड़े हो गये थे। लिली एकदम मुझसे मुड़ गई, "फिर कभी बातें होंगी, सुरेन्द्र ने डांस बुक कर रखा है।" वह हँसती चली गई।

मैंने अपने आपको धिक्कारा। बाहर बरामदे पर आ ताल देखने लगा। बार लौटने में रास्ता मिसेज थापा के टेबुल से जाता था। मैंने झुककर उनके कान में कहा, "सुरेन्द्र" और बालरूम की ओर इशारा कर दिया।

मिसेज थापा ने सिर हिलाया, इशारा किया, धीरेन्द्र जो श्रीवास्तव-स और सिनहा-स के बीच में बैठा मुस्करा-शरमा रहा था।

मैं तो छुट्टी खतम कर कश्मीर चला गया था, पर खबर तीन-चार महीने बाद पहुँच ही गई कि लिली सिनहा की शादी सुरेन्द्र श्रीवास्तव से हुई।

दो साल बाद जब छुट्टी मिली तो फिर नैनीताल चला आया। कुछ नैनीताल बदला-बदला मालूम पड़ता था। फ़्लैट्स में फव्वारा लगा दिया गया था, भीड़ में लड़कियाँ सब नई दीखती थीं। यह न लगा कि मैं अपने पुराने नैनीताल लौट आया हूँ।

चारा क्या था, क्लब में जा फिर ब्रैन्डी आर्डर की। बैरा ने आकर कहा कि मेम सा'ब मुझे बाहर बरामदे में बुला रही हैं।

ताल की तरफ मुँह किये लिली बैठी थी। नैनीताल के साथ लिली भी बदली मालूम पड़ती थी। आकार बढ़ गया था पर अभी वह दुबली चंचल लड़की पहिचानी जा सकती थी।

एक-दूसरे से पूछने बतलाने लगे। थोड़ी देर बाद लिली ही बतलाने लगी। पर उसकी बातों से लगने लगा कि अपने पति के साथ लिली भी सरकरी नौकरी करती रही है ए-एजी, बी-एजी, सी-एजी, डी-एजी की बातें।

मैंने तंग आ पूछा, और धीरेन्द्र, सुरेन्द्र का भाई, उसका क्या हुआ ?"

"वह तो क्लीयरिंग एकाउन्टस में है।"

"अच्छा तो धीरेन्द्र एजी कब बनेगा।"

"तुम्हें तो रेलवे एकाउण्ट्स और आडिट एण्ड एकाउण्ट्स का फरक ही ही नहीं मालूम पड़ता है। वैसे सीनियर स्केल—"

"नहीं लिली, मुझे सही बतलाना होगा कि रेलवे एकाउन्ट्स और आडिट एण्ड एकाउन्ट्स में कौन-सा उत्तम है। दोनों सेंट्रल सर्विसेज हैं।"

"अरे इसमें क्या मुश्किल। आडिट एण्ड एकाउण्ट् स !—उसमें रेलवे के मुकाबिले में सीनियर स्केल पोस्टज ज्यादह हैं।" मेरे बिना उत्तर दिए चुप रह जाने पर लिली ने झकझोरा—"अब क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नहीं, तुम एक मिसेज थापा को जानती थीं ?"

दूध की मूँछें

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के शिक्षक जी, कोशिश करके हार गये अग्रवालजी का लड़का शाखा का सदस्य नहीं हो सका। लड़के को और बालकों की तरह कबड्डी वगैरह खेलना पसन्द था पर शाखा जाने के मसले पर पिताजी डिगने वाले नहीं थे।

अग्रवालजी, स्थानीय कालेज में प्रोफेसर थे और हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील मार्क्सवादी आलोचकों में मुख्य थे। सूक्ष्मता की अपेक्षा उनके निबन्ध दृढ़ता के ज्यादा द्योतक होते थे। उनकी एक हल्की हँसी की आदत थी जिससे वह अपनी उदारता और दीर्घ व शाश्वत मापदण्डों से पूर्ण छिछलापन एक साथ स्पष्ट कर देते थे। उनकी आलोचना ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों से मोर्चा लेती और प्रगतिशील प्रयत्नों के हाथ मजबूत करती थी।

जो कुछ भी अग्रवालजी के विचारों का मूल्य रहा हो, उनकी गम्भीरता और कर्त्तव्यपरायणता में किसी को शक नहीं हो सकता। वे कभी क्लास में लेट नहीं पहुँचे, कभी बिना तैयारी करके नहीं पहुँचे। सम्पादकों को उन्होंने सर्वदा लेख तारीख से एक दिन पहिले भेज दिया।

शिक्षकजी ने कुढ़ कर कहते फिरना शुरू किया, "शाखा कहाँ से आने दें। शाम को घरपर स्तालिनी सलाम का रियाज होता है। नाम देखिये लड़के का क्या रखा है, हर्षवर्धन। हिन्दू धर्म का ह्रास देखिये, बनिये अपने नाम से शरमाने लगे हैं।"

आसपास के लड़के हर्षवर्धन से या तो बड़े थे या छोटे। बैडमिन्टन, क्रिकेट वगैरह खेलों में काफी पैसा लगता था—स्कूल घर से चार मील था और वहाँ उमर में बड़े लड़के के सामने हर्षवर्धन को खेलों में हिस्सा नहीं मिलता। घर के बरामदे और कमरों में टहलने से ऊब कर वह कभी पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर शाखा खेलने चला जाता तो न जाने कैसे अग्रवालजी को पता चल जाता।

खूब डाँट पड़ती—"तुम उस फासिस्टी, कम्यूनल जगह गए क्यों? क्या तुम्हें बात याद नहीं रही। तुम उस गन्दी जगह गए क्यों?"

"मैं तो खेलने भेजा गया था।"

"खेलने-खेलने?—तुम जगत-हँसाई कराते हो।"

पिता का क्षोभ देखकर हर्षवर्धन को बुरा लगता हालाँकि उसको कुछ समझ में नहीं आता।

अगले साल जान्डिस से बीमार अग्रवालजी की बीबी का देहान्त हो गया। अग्रवालजी उसके न होने का शोक न सहन कर सके। हर्षवर्धन के बिना माँ के हो जाने का ख्याल भी उन्हें काटता था, सम्बन्धियों की बात रखने को उन्होंने उसी पूस दूसरा विवाह कर लिया। दूसरी श्रीमती अग्रवाल नाटी दुबली और चपल थीं। हँसने लगतीं तो गश-सा आ जाता था। घर में तबदीलियाँ हुईं। सदा रेडियो बजने लगा—सिनेमा के गाने सुनने से उनका जी नहीं अघाता था। उन्होंने हर्षवर्धन को अंग्रेजी कानवेन्ट में दाखिल कर दिया। उन्हें स्मार्ट चीजें पसन्द थीं।

आने के पहले दिन से ही उन्होंने मिस्टर अग्रवाल की मूँछों पर आपत्ति प्रकट की। मिस्टर अग्रवाल की मूछें कुछ रशियन थीं। गोर्की, लेनिन, स्टालिन को ले लीजिये–बाल ज्यादा हैं, तरतीब कम। मिसेज अग्रवाल पीछे ही पड़ गईं। स्त्री के हठ पर देवता भी डिग चुके हैं। मिस्टर अग्रवाल झेंपते, कभी मुँह पर हाथ रखते टीचर्स रूम में क्लीनशेव्ड आए। कुछ दिनों तक काफी फब्ती कसने का वाकया रहा।

मिसेज अग्रवाल को सिनेमा देखने का भी शौक था और वे अग्रवाल साहब को अक्सर शाम को बाहर ले जाने लगीं। हर्षवर्धन को लगा कि स्वयं पिता के बाहर चले जाने से घर पर रहने का नियम उस पर इतना लागू नहीं होता। वह भी अक्सर शाम को घूमता-घामता कबड्डी के आकर्षण से खिंचा शाखा पहुँच जाने लगा। कुछ अग्रवालजी की दृष्टि कम पैनी पड़ गई थी और हर्षवर्धन का आज्ञा-उल्लंघन छिपा रहने लगा।

उस दिन हर्षवर्धन अन्दर रसोई में था। शिक्षकजी ने बाहर से आवाज लगाई "हर्षवर्धनजी"।

अग्रवालजी बाहर निकल कर आए—"कहिए!"

शिक्षकजी को अपनी गलती महसूस हुई। पर पुरानी खीझ का बदला लेने के लिए उन्होंने कहा, "कुछ नहीं, आज दादा रामतेल भाई का बौद्धिक था, स्वयंसेवकों को समय से पहुँचना है।"

अग्रवाल स्तब्ध उनकी तरफ देखते रहे। शिक्षकजी को लगा कि वह धरे ले जा रहे हैं। कहने का लोभ न संवरण कर सके।

"मैं तो समझा था आपके विचार उदार हो चुके हैं। हर्षवर्धन जी तो किशोर-टोली के घटनायक बन गए हैं।"

अग्रवाल साहब अपने कमरे में क्रोध से बिलकुल पागल लौट आए। सम्भवतः उन्हें यदि सुनने को मिलता कि हर्षवर्धन फेल हो गया है या दुश्चरित्रों की संगति में पड़ गया है तो कम क्षोभ होता। राष्ट्रीय स्वयं सेवकसंघ—एक मजहबी फासिस्टी संस्था जो युवकों को खेलकूद में फुसला कर संकीर्ण विचारों से भर देती है! उनका लड़का, जो विख्यात प्रगतिशील हैं। उन्हें लगा कि हर्षवर्धन उनके घर में एक बड़ा कलंक ले आया है। चोरी से छिपकर वह वहाँ गया!

उनका क्रोध-भाजन उनके सामने देहली में खड़ा था। एक हाथ में टेनिस की पुरानी बॉल लिए दूध पीकर उसने मुँह भी नहीं पोछा था।

"माँ कह रही है कपड़े बदल लीजिये।"

अग्रवालजी काँप कर चीखने लगे। उसे शर्म, हया, चोरी, जगहँसाई सबकी लानतें एक अटूट प्रवाह में देने लगे।

हर्षवर्धन इस क्रोध के प्रदर्शन से स्तब्ध-सा रह गया। चुप जड़ी-सी आँखोंसे पिता की तरफ देखता रह गया। अग्रवालजी को उसके चुप खड़े भर रहने से और खीझ हुई। "चुप क्या खड़े हो शरम नहीं आती?"

लड़के की जड़ता इतनी ही भंग हुई कि उसने कुहनी मोड़कर अपनी कमीज की बाँह से अपना मुँह पोंछ डाला। होठों के ऊपर और नीचे लगी दूध की मूछें गायब हो गईं।

हाथ गिरा फिर हर्षवर्धन डाँट सुनने को तैयार खड़ा हो गया। उसने सोचा कि उसे शायद आँखें गिरा लेनी चाहिये।

हर्षवर्धन बहुत देर खड़ा रहा। पिताजी ने उस दिन और नहीं डाँटा, बहुत देर बाद कहा "जाओ।"

मजबूरी

हेड क्लार्क सामने बैठा शिकायत कर रहा था, "अगर आप ठीक समझें तो साहब गनेशप्रसाद पर चार्ज लगा दिया जाय। वैसे वह नहीं मानेगा। कोई जिम्मेदारी का ख़याल ही नहीं ! शादीशुदा है नहीं, जो नौकरी या तरक्की की फ़िकर हो।"

आज सवेरे से राजेश्वर के मन में आलस्य हो रहा था। सम्भवतः घटा से दबे जाड़ों के दिन में ऐसा होना स्वाभाविक ही हो। वह सुनता ही रहा।

हेड क्लार्क बड़बड़ाता गया, "वह दो दिन की छुट्टी लेकर गया था। बेइत्तला चार दिन बाद आया है। उसके पास इन बाकी दो दिनों की छुट्टी ड्यू भी नहीं है।···या साहब चार्ज वगैरह में झंझट पड़ेगा, आजकल बात-बात में तो 'रिट' लग जाती है, एक महीने का नोटिस दे अलहदा करें।"

राजेश्वर हेडक्लार्क से छुट्टी पाना चाहता था। यह गनेशप्रसाद के खिलाफ दूसरी या तीसरी शिकायत थी—अलहदा करना ही ठीक मालूम होता था। पर आज के इस उखड़े से दिन मन में न जाने क्या आया उसने कहा—"गनेश-प्रसाद को भेज दीजिए। मैं उससे बातचीत करूँगा।···आप जा सकते हैं।"

हेड क्लार्क के जाने के बाद उसके सामने वही कमरा रह गया। चार साल इसमें बैठकर भी इस अँधेरे से कमरे ने कोई आत्मीयता नहीं बढ़ाई थी। राजेश्वर अपने बारे में सोचने लगा। शादीशुदा तो वह भी नहीं—हेड क्लार्क का वाक्य उस पर भी लागू होता होगा।

गनेशप्रसाद अनुमति लेकर कमरे में आया। दुबला-सा साँवला लड़का, सिर्फ एक लाल स्वेटर पहने जो ठंड के लिए नाकाफी था।

"गनेशप्रसाद ?···तुम बिला इजाजत दो दिन छुट्टी पर रहे ?"

"जी हाँ, गलती हो गई। माफी चाहता हूँ।"

"यह तुम्हारे खिलाफ इसी साल का दूसरा या तीसरा अभियोग है। तुम

पढ़े-लिखे हो, समझदार हो, आखिर ऐसा क्यों करते हो।"

"जी गलती हो गई। आगे नहीं करूँगा।" ठंड से बहती नाक को उसने सम्हाला।

राजेश्वर को हठ होने लगा कि वह गनेशप्रसाद को उसकी गलती समझा सके, उसका विस्तृत और दीर्घतर अनुभव करा सके। "देखो हम सब इसी तरह बेतकुल्लफी से गलतियाँ करने लगें तो इस कारोबार, इस आफिस का क्या होगा। फिर हमें तनख़्वाह तो काम करने की मिलती है—बिना काम किए रुपये पाना तो बेइमानी होगी।"

"जी मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ।"

"जरा-सी बात है छुट्टी पर गये थे—अर्जी दे सकते थे। इसको भी भुला देना तो हद की बात है।"

"जी गलती हुई। बड़े बाबू को मालूम था कि मैं घर गया था और देर हो सकती थी। उन्होंने शिकायत कर ही दी।"

"गलत बात है वह अगर तुम्हारी रिपोर्ट न करते तो मैं उनका हवाला पूछता। तुमने अर्जी देने की भी सुध क्यों नहीं रखी। घर से चिट्ठी भेज सकते थे—अगर तुम्हें फिकर होती।"

ठंड तथा अदब में सिकुड़ा वह लड़का चुप ही रहा। आज के अजीब-से दिन उस सिर्फ लाल स्वेटर पर बिगड़ना राजेश्वर से न हो सका। अर्जी तक न भेज सकने में भी कोई मजबूरी होगी और वह अजीब तर्क के साथ ठंड में भी कोट न पहन सकने की मजबूरी के साथ जुड़ी मालूम होती।

राजेश्वर को जो कि गनेशप्रसाद से पाँच-गुना वेतन पाता था, लगा कि उनके बीच समझाना नहीं हो सकता। यह गनेशप्रसाद से बातचीत सिर्फ तय न कर सकने का विश्राम था।

"तुम जा सकते हो।"

गनेशप्रसाद खड़ा रहा। राजेश्वर ने झुंझला कर कहा—"जाओ यह तुम्हारी परसनल-फाइल में चेतावनी स्वरूप रख ली जाती है—आगे न करना।" सामने हेडक्लार्क की रिपोर्ट उसके कर्त्तव्य में ढीला होने का इल्जाम अपनी चुस्त लिखाई से लगा रही थी।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद राजेश्वर के तबादले का आर्डर आ गया। गृहस्थी ही क्या थी—अपने पहाड़ी नौकर से सामान बटोरने को कह दिया—दुकानदारों को चेक लिख दिये।

हेड क्लर्क इतनी खीस निपोर कर अड़े थे कि राजेश्वर को विदाई का जलसा भी सहना पड़ा। हमेशा की तरह का फ्रेम में मढ़ा पत्र था जिसमें उसके अद्वितीय गुणों का सविस्तार वर्णन था। दो बाबुओं ने हारमोनियम पर गाया और एक दफ्तरी ने एक गज़ल पढ़ी। इतना अकुशल आडम्बर था कि उसे बार बार सालाना मुआयना ख़याल आता, बिछुड़ने का भाव जरा भी नहीं। आफिस के कमरे वैसा ही शून्य बनाए रहे। उसने भी कर्त्तव्य-निष्ठा इत्यादि पर भाषण दिया।

इन सब से फारिग हो स्टेशन पहुँचा। नौकर ने सामान लगा दिया था। चपरासी बख़शीश लेकर चले गए। राजेश्वर को गाड़ी का प्लेटफारम पर खड़ा रहना अकारण लगा। उसका मन अभी जलसे से उचटा था। सामने पेश किए कागज पर हस्ताक्षर करने में क्या विशेषता है। कमरे में बदले फरनीचर की तरह अफसर भी बदल जाता है।

राजेश्वर जासूसी कहानी पढ़ जायका बदलने की सोच डिब्बे से उतरा। दरवाजे पर खड़े गनेशप्रसाद से टकराता ही बचा।

राजेश्वर को उसे देख खुशी हुई। शायद गनेशप्रसाद की नौकरी, उसकी मजबूरी समझना ही सभी अफसरों से न होता। गनेशप्रसाद का मात्र स्वेटर उसके विषाद पर इन्कलाब कर रहा था।

"कैसे हो गनेशप्रसाद ?"

"नमस्ते करने चला आया था।"

गनेशप्रसाद आज पान खाए हुए था जो होठों के दोनों कोनों से खूब चू रहा था। राजेश्वर को हँसी आ गई गनेशप्रसाद के गनेशप्रसादपन पर।

"तुम कभी नहीं बदलोगे। मेरा तुम्हें समझाना व्यर्थ है मैं जानता हूँ। बड़े बाबू की बात मानों शादी कर डालो सब फिकर हो जाएगी। अर्जी देना सीख जाओगे।"

"जी हो गई...ये...ये।"

आश्चर्य चकित राजेश्वर को उसने अपने पीछे खड़ा दुबला दीर्घ घूँघट दिखलाया। वह भी नमस्ते कर रहा था। गनेशप्रसाद अतिशय गर्व से मुस्करा रहे थे।

"जी मँगनी पक्की करने में ही तो भूल गया था।"

इंजिन ने सीटी दी और राजेश्वर डिब्बे पर चढ़ गया। अभी मन इस नई बात के प्रभाव में ही था—गाड़ी चल दी। गनेशप्रसाद की घूँघट काढ़े 'मजबूरी' पिछड़ गई। गनेशप्रसाद का पान से बहता मुँह भी।

राजेश्वर के मन में लाल स्वेटर को लेकर हुआ संतोष भी।

म्यूज़ियम

सीढ़ियाँ चढ़ते उसे फिर शक हुआ। कोने पर उतरते एक कुली को रोक-कर उसने पूछा, "रिटायरिंग रूम नम्बर ३४ कहाँ मिलेगा।"

"ऊपर कतार में आख़िर की तरफ़।"

नीचे स्टेशन से किसी छूटते इंजिन ने सीटी दी। दिल्ली स्टेशन वह कितनी बार आ-जा चुका था, पर यह भाग उसके लिए बिलकुल नया था। प्लेटफारम की चलाचली और खास बू दूर हो गईं थीं पर बिलकुल अनुपस्थित नहीं थीं। एक बेयरा उतरता गुज़रा।

सीढ़ियाँ चढ़ चुकने पर उसने एक लम्बी साँस ली। पुराना जुकाम जोर पकड़े था। यदि लापरवाही हुई तो इंफ्लूएंजा तय था। कपड़ों के नीचे भी उसका बदन ठंड से सिहर जाता। शायद स्टेशन की सीलन थी, जिधर धूप के लिए प्रवेश दुर्लभ था।

माला ने भी मिलने को क्या जगह चुनी। माला ने—माला नाम गूँजता सा मन में रह गया।

कमरा नं० ३४ बाहर से बन्द न था। खटखटा, वह दरवाजा खोल दाखिल हुआ।

कमरे में एक टेबल लैम्प की पीली रोशनी थी। फरनीचर अजीब सफेद रोगन का था—किसी बाथरूम का-सा। पलंग पर होलडॉल खुला था—और सामान भी कुर्सी-जमीन पर फैला था। माला आराम कुर्सी पर लेटी-सी थी। नहा चुकी थी—कपड़े बदल चुकी थी।

वह झिझका रह गया। समझ में नहीं आया कि वह अपने से क्या करे ? वह आया ही क्यों, छुट्टी ले कहीं चला जाता। माला का आत्मविश्वास ही बढ़ा मालूम पड़ता था, समय से—आँखें चमकतीं उस पर मुस्करा रहीं थी। वह क्यों आया ? शायद एक बार माला से हिसाब बन्द करने—मिलना ही था।

"तुम्हारा हमेशा का जुकाम बढ़ गया मालूम होता है। अरे बैठो चाय मँगा रखी है—पर यह न जाने तुम्हें कैसी लगे।"

"तुमने तो माला बिलकुल 'सरप्राइज' कर दिया" वह बैठ गया "यहाँ कहाँ ठहरीं! मेरे घर ही ठहर जातीं—"

"उसका अन्देशा नहीं। पर जो एक शाम हूँ तुम्हें मेरे साथ घूमना पड़ेगा। क्यों, इतना तो बेखटके कर सकते हो?"

"कैसी बातें करती हो? जरूर-जरूर।"

माला हँस कर चाय बनाने लगी। "तुम नहीं पियोगी?"

"मुझे तो तुम कनाट प्लेस में काफी पिलाओगे—पहले की तरह। तुम तो एक-से ज्यादा कितनी ही प्यालियाँ पी सकते हो।"

"हाँ-हाँ।"

माला ने अभी तक कुछ कहा नहीं। उसे यह विश्वास न होता कि माला ने उसे सिर्फ़ शाम के 'एसकोर्ट' होने के लिए बुलाया था। या सिर्फ दोस्ती निभाने यात्रा तोड़ी थी। उनके बीच तो इतना कुछ था, और माला उसकी तरह बस बह कर दूर होने वाली नहीं थी; माला का स्वभाव जिन्दगी में बहते गुजर जाने का बिलकुल न था। वह उसे पीड़ा दे सकती थी और अपने आप इतना सह चुकने पर ऐसे लालच से बच पाना सरल नहीं था।

उसने माला को बैठा दरवाजा बन्द किया, फिर घूम कर बगल में स्टीयरिंग पर बैठा। शाम थी।

"कनाट-प्लेस सीधे ले चलूँ।"

"नहीं जैसे तुम्हारा मन करे।"

कश्मीरी गेट से भी निकल आए। वह चुप बैठी सामने-बाहर देखती रही। माला को अन्दाज तो हो गया होगा कि वह कहाँ ले जा रहा है। लॉज में लड़के क्रिकेट प्रेक्टिस कर रहे थे।

अलीपुर रोड से दाहिने घूम जमुना पर निकल आए।

"एक बाँध-सा है, उस पर चढ़ कर देख लो, जमुना कुछ उतरी हुई हैं।"

उसने कार रोक कर कहा। नदी दीखती थी, उस पार का किनारा धुंध-सा बना था। चाँद पेड़ों की सरहद से सिर उठा रहा था।

माला कार से नहीं उतरी। "यहाँ क्यों ले आए? क्या रखा है? तुम्हें रोमान्टिसिज्म बरतना खूब आता है, अब भी उतना ही आता है।"

वह प्रत्युत्तर में कुछ न कह सका। उसने तो सोचा था कि माला यह ही चाहेगी। वह उसे रोक सकती थी।

"माला—"

"उफ्फोह, कार तो चलाओ।"

वह तय किया—याद किया-सा दुहराने लगा, "तुम क्या मुझको कुछ नहीं कहने दोगी। मैं भी तुम्हें एक तरह से प्रेम करता था—मानोगी?—मैं अपने आप को गलत समझा और तुम्हें उस गलती का दुःख सहना पड़ा···।"

"मुझे तुमसे पूर्ण सहानुभूति है। इतना धोखा तुम्हारे साथ हुआ! पर कुछ कह न सकने वाली बात गलत है। तब भी तुमने खूब कहा था और अब भी अपनी सफाई में साँस नहीं लोगे।"

माला ने केप का कॉलर ऊँचा किया और इस इशारे से बात समाप्त हो गई। कार स्टार्ट कर उसने पूछा, "तो कहाँ चलोगी?"

"कहीं भी।"

"चलाऊँ भी मैं पर वहीं जहाँ तुम्हारा मन भावे।"

माला को बैठा वह सामने की कुर्सी पर बैठा। रेस्तराँ में मेजों पर मेजपोश बिछे दीख पड़ते थे—डिनर शुरू हो रहा था। इधर-उधर देख माला की ओर देखा। क्या चार साल पहले के कोई और इस रेस्तराँ में होंगे—तब से तो इसकी सजावट दो दफ़ा बदली जा चुकी है। उसे एकाएक याद आया वह गर्व जो माला को सामने बैठा उसे चारों तरफ बेयरा ढूँढने में हुआ करता था।

माला की सुन्दरता न बढ़ी थी, न घटी। वही पूरा उपयोग किया हुआ मुख-शृंगार। अपने रूप की पाई-पाई वसूल कर लेती है—भगवान् ने ही रकम देने में कोई उदारता नहीं दिखलाई। माला को सुन्दरता के अभाव ने कभी विचलित नहीं किया—अपने साधारण होने की बात को सहज ही दुह-राने की आदत के बावजूद, उसे शक था कि माला ने यह बात मन में जानी भी थी? माला को अपने से पूर्ण सन्तोष था—इसीलिये तो उसे यह बात समझ में ही नहीं आई थी—समझ में ही नहीं आई थी कि कोई उससे शादी नहीं

करना चाहता है।

बैन्ड में वायलिन सोलो बजने लगा।

माला कैसी सौम्य बैठी है। किसी मूर्ति की तरह दूर—जो प्रभाव डाल सके पर जिस पर कोई प्रभाव न हो। पर वह तो माला को बिल्कुल निरीह जान चुका है, आवरण हीन, टूटी हुई। इस अछूती दूरी को ही तो रिझाने वह बढ़ता गया था, और पास—आ जानी निरीहता ने हमेशा को एक बन्धन डाल दिया था।

माला नैपकिन खोल अपने ऊपर सजा रही थी। इस साधारण कार्य में पूरे ध्यान से व्यस्त। उसे मालूम था कि सजा लेने के बाद माला की आँखें उससे टकराईं तो उनमें उसका कौतूहल न समझ आएगा, न कौतूहल के बारे में कौतूहल झलकेगा।

"क्या देख रहे हो?"

"कुछ नहीं।"

माला की इस सौम्यता का कारण वह जानता था। माला को कल्पनाशील तो नहीं कहा जा सकता, उसे साधारण, चटकीली चीजें पसन्द थीं; रोजमर्रा सिनेमा के स्वप्न जगत् से उसकी कल्पना का पूरा साम्य था; उसे जिन्दगी से किसी गहराई में divine discontent नहीं थी। अपने आपको मैटर ऑफ़ फैक्ट वह कितनी बार दुहराती थी—चाहे और लड़कियों की भावुक उच्छृंखलता से विभिन्नता ही जताने। तब भी, माला अपना जीवन एक मन के कमरे में बिताती थी। उसमें सदा चीजें सजाते, करीने से लगाते, सदा उसमें बन्द।

"सूप ठंडा हो रहा है।"

दूसरे को समझने के प्रयत्न पर क्या बाध्य करता है। व्यक्तिगत संबंधों को हम बच्चों की क्रीड़ा-सा रखना चाहते हैं। सदा एक दूसरे को सुख देते रहें, सुख पाते रहें। सरल आत्मीयता की क्रीड़ा-विचार के सेब में दाँत गड़ाने पर बाध्य ही किये जाते हैं। एक तरह का एक्सप्लोरेशन भी मान्य है, जो पहिचानी या प्रिय आकृति पर हाथ सहलाने-सा हो। क्या बाध्य करता है? एक दिन ग्रह अव्यवस्थित हो जाते हैं, वह सुख में तपते, तपाते रहने का निर्धारित पथ डगमगा जाता है। तब सुख के आदी हम उसे समझौतों से बचा रख सकने का

प्रयत्न करते हैं—कितना दे सकते हैं, क्या देना ही होगा जानना शुरु करते हैं।

रेस्तराँ का आरक्रेस्ट्रा जोर से जाग उठा।

"तुम ऐसे सहमे-सहमे से क्या बैठे हो? मैं तुमसे आज शादी के लिए नहीं कहने वाली हूँ।"

"मैं सहमा नहीं बैठा। माला, अगर मैं शादी से मुँह छिपा गया तो तुम भी दूसरी तरह की चीजों से मुँह छिपा जाती हो।"

"जैसे।"

उसके मन में उत्तर को बहुत से इम्प्रेशन्स उठ आए—छोटी सूक्ष्म बातों से लक्षित कड़ी, जिसे वह कैसे बतलाए। जिस दिन माला को पहली बार बाहों में लिया था, उसके पहले वह होने वाला क्षण उनके ऊपर डैमोक्लीज की तलवार की तरह टँगा रहता—दोनों किन्हीं रेशमी तारों से खिंचे बँधे रहते थे। वह हमेशा पीड़ित और माला सदा दीर्घ सौम्य। चाहें सामुद्रिक हिमखण्ड के ऊपरी भाग-सी ही। कार उसने टॉवर के नीचे रोक दी थी।

"चलो ऊपर।"

वह बैठा रहा था, "मैं यदि ऊपर गया, तो उत्तरदायी न रहूँगा जो कर डालूँ—उसका।"

"चलो भी।"

माला को उसका अभिप्राय मालूम था। माला ही के घूम जाने से, माला ही की कला से वह प्रथम आलिंगन बिलकुल असफल न रहा था।

वह माला के "जैसे" के उत्तर में बाद में माला का कहा "Satisfied" सुनाना चाहता था। उस पर एक दात्री की अनुकम्पा जताता, जो जरा भी लुटाने वाले का उलाहना नहीं था।

पर उसने कुर्सी में झुककर कहा, "माला तुमने अब भी मेरी सारी चिट्ठियाँ, नोट्स—और वह हरा ब्लाउज—सम्हाल रखे हैं न? सच बतलाओ।"

माला ने अरुचि में आँखें सिकोड़ी। पर वह उसकी तरफ देखता ही रहा।

"ब्लैकमेल नहीं करूँगी" माला ने हँसने की चेष्टा की।

"सम्हाल रखे हैं न?"

"कहीं पड़े होंगे, लैवण्डर में नहीं, घबराओ मत।"

"मेरा मतलब वह नहीं था। मैं जानना चाहता था कि तुम्हारे मन के संग्रहालय में क्या आ चुका है। सब विख्यात चीजें सजाई जाती हैं—पहला प्यार, भावुकता, passion। निक नैकस! मेरा आखिरी विश्वासघात ही म्यूजियम में नहीं डाल पाई होगी।" माला मुस्कराने में सफल हो गई। उसने काँटा छुरी नहीं रखे।

"तुम्हारे लिए ड्रामा में सोचना आवश्यक है। नहीं तो एक विशाल रोमान्टिक अहँ किस तरह से पिता की आज्ञा से हारी, चोरों की-सी प्रीत की बात सोच सकता है। मैं तो जैसी थी—वैसी ही हूँ।"

पर माला को बुरा लग गया था। सिर झुका कर खा रही थी—माथे पर तनाव था। वह भी चुप हो गया। फिर वायलिन सोलो बज रहा था। वह मन में दुहराती-दुहराती बातें सुनने लगा।

माला का कमरा तीसरे फ्लोर में। कमरे में टेबल लैम्प ही जला है—क्योंकि माला को ऐसी दबी रोशनी, धूप-बत्ती के धुएँ का वातावरण पसन्द है। वह आफिस से आई लेटी है, उसी पलंग पर बैठा वह खिड़की से बाहर देख रहा है। जाड़ों की शाम में नई दिल्ली के सलोने स्ट्रीट लैम्प जल गये हैं और काली-काली सड़कों को दृष्टि उनकी शृंखला के साथ दूर-दूर तक ढूँढ सकती है।

"जवाब आ गया।"

उसने बाहर ही देखते कहा "हाँ—फर्म का एपोइंटमेंट लैटर आ गया है।"

"वह तो परसों ही आगया है—मैं तो तुम्हारे घर से जवाब की पूछ रही थी।"

उसे भी मालूम था कि प्रश्न क्या था।

"माला मैंने घर चिट्ठी नहीं लिखी। न लिखूंगा। मुझे मालूम है कि घर वाले कभी मान नहीं सकते। और मैं उनकी अवहेलना नहीं कर सकता।"

उसके स्वर में कुछ रहा होगा। माला पर वह तलवार के घात सदृश पड़ा।

"तुमने क्या कहा!"

उसके कन्धे पर माला का जकड़ा हाथ—उसने माला को मुड़ कर देखा था। उस क्षण के बराबर वह माला के वश में कभी नहीं हुआ था। वह

आहत—वह पीड़ा मानता चेहरा उससे कुछ भी करा सकता था। वैसी आवरण-हीनता उनके किसी प्रेम करने के क्षण में माला ने नहीं मानी थी। पर क्षण चला जाता है।

माला ने उसे दोषी ठहराना तय किया था। वह तो खुद सब अभियोगों पर हामी भरने, किसी भी सजा को लेने तैयार था। जो पीड़ा में दास था—अभियोगी के सम्मुख सिर्फ अभियुक्त था। उसके बाद भी वह मिलते रहे, बहस होती रही। माला के समझ न आता और वह एक नैराश्य से अपने निश्चय में और डूबता जाता। "यहाँ से चला जाय—तुम कॉफी पियोगे?"

डांस फ्लोर पर जोड़े आ रहे थे। उसे रेस्तराँ का वातावरण भार-सा लगा—गर्म घुटता हुआ-सा। वह खड़ा हो गया।

बाहर सड़कें बारिश से भीगी हुई थीं। कनाट प्लेस के पेड़ तीखी हवा में विह्वल हो जाते थे—फिर झूम चुप हो जाते। सब सूनसान था। कार का दरवाजा चाबी से खोलते दूसरी तरफ खड़ी माला को उसने सहसा देखा। केप में ठुड्डी गड़ाये, अपने में सिमटी, बहुत दूर खड़ी लगी, जिसको अपनाने का सहज विश्वास उसका भाव जगत् सदा के लिए खो बैठा है—उसे निर्विवाद मान लेने की बात जान पड़ी।

माला ने कहा, "मुझे यह खुली हवा अच्छी लग रही है, जरा इंडिया गेट की तरफ चलो—चलाते रहो—रुकेंगे नहीं—तुमने अब क्या करने की सोची है?"

उसने एक दम समझ, पूछ डाला, "तो तुम्हारी और मेजर की बात सच है?"

"हाँ, सिद्धू और मैं, बचपन से एक दूसरे को जानते हैं—कालेज में साथ थे फिर वह Army में चला गया।"

इंडिया गेट की बत्तियाँ बुझ चुकीं थी। चक्कर लगा उसने कॉर स्टेशन की ओर मोड़ी।

एडमिशन

गर्मी की छुट्टियों में इम्तिहान का नतीजा आया और जिस बात का मुझे भय था वह ही हुआ। मेरी फिर सैकिंड डिविजन थी। अपने में निराश होने से ज्यादा मुझे पिता जी के मुझ पर निराश होने का दुःख हुआ। वे तिलक और थीयोसाफ़ी के युग के हैं और सफलता और चरित्र का सम्बन्ध अनायास ही मानते हैं। स्वयं उच्च आदर्शों से जिन्दगी बिताते रहे तथा जीवन के अपने दायरे में सदा फर्स्ट रहे हैं।

"नवीन, दुःख करना व्यर्थ है। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। तुम्हें वह कर्म पूरा-पूरा किया होने का संतोष होना चाहिये। फिर यह कोई आखिरी इम्तिहान तो है नहीं। अपने दोषों को समझो और प्रयत्न कर दूर करो।"

"जीहाँ, कुछ तो पढ़ा लिखा था ही। प्रैक्टिकल धोखा दे गया। मैं नरवस हो गया और वही 'सर्किट' जो आँख बंद कर बाँध लेता बँधा ही नहीं—बंधा ही नहीं।"

पर सच इतना ही नहीं था। साल भर मेरा मन पढ़ने में न लगा था। पिछले साल कमरे में लगाई न्यूटन की तस्वीर अब कुछ मोह न उत्पन्न करती थी। पिछली क्लासों तक तो विज्ञान का रस जगत में चारों ओर की चीजों के रहस्य जानने का था—रेडियो, बादल अथवा डाइन माँ की असलियत मालूम करने की। पर अब हम प्रैक्टिकल जगत और रिसर्च की ऊँची चोटियों दोनों से बराबर दूर की बातें पढ़ते थे। मैंने महसूस किया कि यह थ्योरमस—एफेक्ट्स की तपस्या मुझे एक बड़ी ऊब से भर देती। साल भर मैं अपने सहपाठियों से विज्ञान की सीमाओं पर बहस करता रहा था। किस तरह से विज्ञान हमें पूर्ण सत्य नहीं प्रदर्शित करता, कैसे कल्पना का संपूर्ण विधान उससे अछूता रह जाता है। क्यों कि साइंस पढ़नेवाले लड़के जरा क्रिकेट पर ही बहस कर सकते हैं मुझे अपने तर्क सच लगने लगे थे।

फिर मन में एक नई बात भी आ गई थी। लगने लगा था कि जिन प्रश्नों का उत्तर मुझे सबसे ज्यादा चाहिये था वे थे—मैं क्या हूँ ? और मुझे क्या करना चाहिये ? विज्ञान में इनके उत्तर नहीं थे—विज्ञान तो सदा बदलता रहता है और मुझे लगता कि मेरे प्रश्न का उत्तर पाने की वही सहूलियत मुझसे पचास साल पहले और पचास साल बाद में पैदा होने वाले को होनी चाहिये।

साल भर खूब साहित्य पढ़ा था।

× × ×

कई दिन सोचने के बाद मैंने पिताजी को मनाने का ढंग तय किया। "मैं सोच रहा था कि मुझे अब भविष्य की सोचनी चाहिये। मैं जीवन से क्या करना चाहता हूँ—मेरा मतलब मैं जीविका कैसे कमाना चाहता हूँ।" पिताजी ने जीवन के नाम पर अखबार की तन्द्रा तोड़ी थी—जीविका के नाम पर वे 'हूँ' कर कांग्रेस की बेवकूफियों में निमग्न हो गए।

"मैं सोच रहा था बनारस जाने का तो अब सवाल रहा नहीं। वहाँ द्वितीय श्रेणी वालों की पूछ कहाँ ? रुड़की मुझे अरुचिकर भी है तथा कोई सम्भावना नहीं कि मैं उसकी परीक्षा में इससे अधिक भाग्यशाली होऊँ।"

"कोशिश कर सकते हो।"

"नहीं पिताजी मैं सोचता हूँ कि अब इंजिनियर होने का ख्याल छोड़ देना चाहिये।"

"तो क्या करोगे ? विज्ञान पढ़ कर ही क्या कर सकते हो।"

"जी हाँ, यह ही तो मैं भी कहना चाहता था। विज्ञान पढ़ने से कोई लाभ नहीं।"

"क्या कहा ?" उन्होंने अपने और मेरे बीच का अखबार बिलकुल गिरा दिया।

"मैं कह रहा था कि यदि सरकारी नौकरी अथवा लैक्चररी ही करनी है तो मैं साइंस छोड़ आर्ट्स क्यों न ले लूँ। कम्पिटिशन्स में विज्ञान वाले अपने कमजोर Expression के कारण असफल होते हैं और अखिरकार विज्ञान और आर्ट्स के टीचर तनख्वाह तो वही पाते होंगे। फिर पिताजी जहाँ एम० एस-सी० में दो फर्स्ट डिवीजने आती हैं—अँग्रेजी विभाग में लड़कियाँ ही तीन-

चार निकाल ले जाती हैं।"

माँ नौकर को ढूँढती आँगन में निकल आई थी। "पता नहीं कहाँ चला जाता है जब भी काम हो। नवीन चल जरा अन्दर और अचार के मर्तबान उठा दे।"

मैं पिताजी के उत्तर से बच गया।

× × ×

मैंने पिताजी के सम्मुख कभी अपने साहित्य के प्रति उत्साह का प्रदर्शन नहीं किया। सदा दुनियादारी की आड़ ले साइंस से छुटकारा पाने की बातों को बढ़ाया। शाम को वह कचहरी से आ अपना हुक्का गुड़गुड़ाते तो मैं कहता!

"आजकल की पढ़ाई को ज्ञान की प्राप्ति-वाप्ति मानना तो नादानी है। आपके जमाने में एक दो लड़के रहते थे, फिर मास्टर भी अँग्रेजी सीधे Cardinal Newman के पढ़ाए आक्सफोर्ड के आते थे। उन्हें न गोल बनाने से मतलब न गुटबाजी से। यहीं देखिये कोई-कोई परीक्षक तो आज कल छह-छह सात-सात पेपर सेट करते हैं और फिर दूसरों से जंचवाते हैं। बस घास कटाई। होंगे प्रोफेसर पर पिताजी अपर मिडिल के लिए टेक्स्ट बुक लिखने में नहीं झिझकते।"

पिताजी की गुड़गुड़ निरन्तर चलती रहती।

"इम्तिहान भी ज्ञान नहीं मापते; उनमें सफलता पाना तो कला है। मैं अपने ही बारे में कह सकता हूँ कि मैं सुरेन्द्र से कम गणित नहीं जानता, कुछ ज्यादा ही। पर मैं वर्ष भर अनइम्पार्टेण्ट में सर खपाता रहा—और परीक्षा में आए Solved Examples! अंग्रेजी में तो सुना है लड़के कोर्स की किताबें खरीदते ही नहीं।" पिताजी चुप ही रहते। जब जून बीतने लगा और फार्म भर भेजने की तिथि आ ही गई तो मैंने कलेजा हाथ में ले पूछ ही डाला—"तो मैं एम० ए० का फार्म भर दूँ।" मुझे पिताजी के उत्तर पर न जाने क्यों आश्चर्य-सा हुआ।

"तू जब लेने पर तुला ही हुआ है तो ले ले।"

× × ×

प्रोफेसर दत्ता अपनी हिलमैन गाड़ी से उतर अपने कमरे में घुस गए। मैं

चपरासी के स्टूल के पास खड़ा हो गया था पर उनके बूढ़े मुसलमान चपरासी महाशय की भी आँख मुझ पर न पड़ी। प्रोफेसर दत्ता नाटे थे और उनका बन्द गले का कोट उनकी ऊँचाई कुछ और घटाता था।

"मुझे प्रोफेसर साहब से मिलना था।"

मैं खड़ा था पर चपरासी महाशय स्टूल पर विराज चुके थे। "एडमिशन?" उन्होंने ऊब में पूछा।

"हाँ वैसा ही कुछ। क्यों साहब मिलेंगे?"

"नहीं, वक्त नहीं है।"

मैं द्वारपाल से अनुनय करने की सोच रहा था कि अन्दर से "सुलेमान!" स्वर गरज पड़ा। यह मैंने पहली बार प्रोफेसर दत्ता की मशहूर बुलन्द आवाज सुनी थी।

मुझे खुद सुनाई पड़ गया, "बाहर के लड़के को भेजो।"

कमरा काफी बड़ा था और आगे की ओर क्लास की कुर्सी-मेजें लगीं थी। प्रोफेसर दत्ता बड़ी मेज पर कुहनियों पर झुके, मुझे चश्मे के ऊपर से घूर रहे थे। मुझे कुर्सी पर बैठने की हिम्मत न हुई।

"यंग मैन! जानते हो मैंने तुम्हें क्यों बुलाया—सीधे प्रोक्टर के पास क्यों नहीं भेजा। मैं जानता हूँ तुम समझते हो अपनी गलती का दो रुपया फाइन देकर छुटकारा पा लोगे। तुम्हारे जैसे लोग जो साइकिल चोरों को बढ़ावा देते हैं इससे कहीं ज्यादा सजा पाने के भागी हैं। मैं तुम्हें बतला रहा हूँ कि मैंने तुम्हारा नाम नोट कर लिया और मैं एक्जिक्यूटिव कौंसिल में तुम जैसे लोगों के खिलाफ प्रस्ताव रखूँगा।"

मेरा सर चकराने लगा था। गिड़गिड़ा दिया, "सर, पर मैं तो रिक्शे पर आया था। मेरे पास तो साइकिल है ही नहीं।"

"साइकिल है ही नहीं? तो खो गई न। तुम समझते हो कि बिना ताला के साइकिल रखने में कोई भय ही नहीं है और हम लोग शायद निपट मूर्खता में रूल्स बनाते हैं। खो गई—दिस मेक्स इट वर्स। बोलो अपना नाम।"

अब तो मुझे अपने या प्रोफेसर दत्ता पर सन्देह होने लगा था।

"सर नाम तो मेरा नवीन कुमार है। पर न मेरे पास कोई साइकिल है,

न मैंने कभी ताला न बन्द किया। मैं तो आप से एडमिशन के सिलसिले में मिलने आया था।"

प्रोफेसर दत्ता ने मेरे चेहरे पर आँखें जमा दीं। मुझे सदा की भाँति अपनी लम्बी नाक का संकोच हुआ। करीब पन्द्रह सैकिंड के दृढ़ अवलोकन के बाद वे कुर्सी में वापिस लधर गये।

"तुमने आज अपना चश्मा कहाँ रखा है।"

मुझे अपनी ६-६ आँखें होने का नाज है। मैंने जरा तेजी से कहा, "जनाब मैं तो धूप का चश्मा तक नहीं पहिनता।"

"ओह" उनका सारा कसापन ढीला-सा पड़ गया। मुझे बिलकुल भूलकर उन्होंने पुकारा, "सुलेमान—तुमने गलत लड़का भेजा है?"

मुझे शायद जान बचा भाग जाना चाहिए था पर, कुछ तो मैं उनकी डाँट की ज्यादती से क्रुद्ध था और कुछ सोचकर कि जितना डाँट चुके हैं उससे अधिक तो डाँट न सकेंगे मैं खड़ा रहा।

"सर, नाम तो आपने नोट कर लिया है। मैं एम० ए० ज्वाइन करना चाहता हूँ।"

"नो सीट यंग मैन! पता नहीं आज कल रजिस्ट्रार को क्या हो गया है। लड़के···लड़के। क्या कविता एक साथ ४५ लड़कों को पढ़ाई जा सकती है। सैमिनारस पबलिक मीटिंग से होने लगे। असम्भव। इकनोमिक्स ले लो, फाइव इयर प्लान की वजह से देश का बंटाधार कर सकने वालों की माँग बढ़ गई है।"

"जी एकनामिक्स से भला तो मैं विज्ञान में ही रह सकता हूँ—"

"तो रहो। रोज प्रधान मंत्री दुहरा रहे हैं कि हमें वैज्ञानिक चाहिए। साहित्य पढ़ने-पढ़ाने और शायद लिखने का भी युग गया। अब वह अवकाश की सदियाँ न लौटेंगीं।"

मैंने निराश हो कहा, "तब ठीक है सर। मुझे यह न मालूम था कि साहित्यवाले भी अब युग का आदर्श निभाते हैं।"

मैं तो मुड़ चुका था। वैसे ही डपट कर डाक्टर दत्ता ने कहा, "सिट डाउन यंग मैन। कितना शैली पढा है?"

सीता

रेस्टराँ में टेबल खाली नहीं थी इस कारण उससे अनुमति लेकर एक पुरुष और महिला उसके टेबल पर कुछ देर को बैठे। भीड़ कम नहीं हो रही थी और महिला सुन्दर थी, श्याम ने अपना चाँदी का सिगरेट केस निकाला। श्याम ने कितना ही कैच दबाया पर सिगरेट केस ने खुलने से जवाब दे दिया था।

"मैं देखता हूँ कि यू हैव नो मैकेनिकल बेन्ट ऑफ दॅ माइंड। इधर दीजिए।"

श्याम ने सिर हिलाकर केस बढ़ा दिया। उस युवक ने केस को उपर नीचे ठोका, दाएँ बाएँ हिलाया, फिर जबान दाँत के बीच कर एक सावधान कोण से पकड़ा और जोर दिया। केस खुल गया।

श्याम ने धन्यवाद दे सिगरेट लेने को इशारा किया। उस युवक ने सिगरेट निकालते शायद उसकी बैटेलियन का मोनोग्राम केस के अन्दर देखा।

"यह आप ही का है ?" श्याम ने हामी में सिर हिलाया।

"थैंक गॉड यू ऑर ए सर्विस मैन ! मैं रनजीत हूँ—सैकिंड गोरखाँस। हम लोग आपकी तरह भाग्यशाली नहीं हैं।"

रनजीत के साथ की महिला ने उसका ध्यान एक कोने में खाली हुई टेबल की ओर आकर्षित किया।

श्याम ने कहा—"अगर कोई खास दिक्कत न हो तो यहीं बैठिए न। मेरी तो इस शहर में—घर में छुट्टियाँ बितानी मुश्किल हो गई हैं। और इन्हीं के लिए हम साल भर आशा लगाये रहते हैं।"

रनजीत उठने को तैयार नहीं था। "मैंने पिछले हफ़्तों में तुम्हारे साथियों का इन्टैलैकचुअल-हम्बग दस बार सुना और चूँ नहीं की। अब जरा बारी है साफ स्वस्थ मर्दानी बातचीत की और मैं मौका नहीं खो सकता। यह तुम्हारी नानसेन्स के लिए अच्छा रहेगा। यह मेरी बहन सीता है।"

न मैंने कभी ताला न बन्द किया। मैं तो आप से एडमिशन के सिलसिले में मिलने आया था।"

प्रोफेसर दत्ता ने मेरे चेहरे पर आँखें जमा दी। मुझे सदा की भाँति अपनी लम्बी नाक का संकोच हुआ। करीब पन्द्रह सैकिंड के दृढ़ अवलोकन के बाद वे कुर्सी में वापिस लधर गये।

"तुमने आज अपना चश्मा कहाँ रखा है।"

मुझे अपनी ६-६ आँखें होने का नाज है। मैंने जरा तेजी से कहा, "जनाब मैं तो धूप का चश्मा तक नहीं पहिनता।"

"ओह" उनका सारा कसापन ढीला-सा पड़ गया। मुझे बिलकुल भूलकर उन्होंने पुकारा, "सुलेमान—तुमने गलत लड़का भेजा है?"

मुझे शायद जान बचा भाग जाना चाहिए था पर, कुछ तो मैं उनकी डाँट की ज्यादती से क्रुद्ध था और कुछ सोचकर कि जितना डाँट चुके हैं उससे अधिक तो डाँट न सकेंगे मैं खड़ा रहा।

"सर, नाम तो आपने नोट कर लिया है। मैं एम० ए० ज्वाइन करना चाहता हूँ।"

"नो सीट यंग मैन! पता नहीं आज कल रजिस्ट्रार को क्या हो गया है। लड़के··लड़के। क्या कविता एक साथ ४५ लड़कों को पढ़ाई जा सकती है। सैमिनारस पबलिक मीटिंग से होने लगे। असम्भव। इकनोमिक्स ले लो, फाइव इयर प्लान की वजह से देश का बंटाधार कर सकने वालों की माँग बढ़ गई है।"

"जी एकनामिन्स से भला तो मैं विज्ञान में ही रह सकता हूँ—"

"तो रहो। रोज प्रधान मंत्री दुहरा रहे हैं कि हमें वैज्ञानिक चाहिए। साहित्य पढ़ने-पढ़ाने और शायद लिखने का भी युग गया। अब वह अवकाश की सदियाँ न लौटेगीं।"

मैंने निराश हो कहा, "तब ठीक है सर। मुझे यह न मालूम था कि साहित्यवाले भी अब युग का आदर्श निभाते हैं।"

मैं तो मुड़ चुका था। वैसे ही डपट कर डाक्टर दत्ता ने कहा, "सिट डाउन यंग मैन। कितना शैली पढा है?"

सीता

रेस्टराँ में टेबल खाली नहीं थी इस कारण उससे अनुमति लेकर एक पुरुष और महिला उसके टेबल पर कुछ देर को बैठे। भीड़ कम नहीं हो रही थी और महिला सुन्दर थी, श्याम ने अपना चाँदी का सिगरेट केस निकाला। श्याम ने कितना ही कैच दबाया पर सिगरेट केस ने खुलने से जवाब दे दिया था।

"मैं देखता हूँ कि यू हैव नो मैकेनिकल बेन्ट ऑफ दें माइंड। इधर दीजिए।"

श्याम ने सिर हिलाकर केस बढ़ा दिया। उस युवक ने केस को उपर नीचे ठोका, दाएँ बाएँ हिलाया, फिर जबान दाँत के बीच कर एक सावधान कोण से पकड़ा और जोर दिया। केस खुल गया।

श्याम ने धन्यवाद दे सिगरेट लेने को इशारा किया। उस युवक ने सिगरेट निकालते शायद उसकी बैटेलियन का मोनोग्राम केस के अन्दर देखा।

"यह आप ही का है?" श्याम ने हामी में सिर हिलाया।

"थैंक गॉड यू ऑर ए सर्विस मैन! मैं रनजीत हूँ—सैकिंड गोरखाँस। हम लोग आपकी तरह भाग्यशाली नहीं हैं।"

रनजीत के साथ की महिला ने उसका ध्यान एक कोने में खाली हुई टेबल की ओर आकर्षित किया।

श्याम ने कहा—"अगर कोई खास दिक्कत न हो तो यहीं बैठिए न। मेरी तो इस शहर में—घर में छुट्टियाँ बितानी मुश्किल हो गई हैं। और इन्हीं के लिए हम साल भर आशा लगाये रहते हैं।"

रनजीत उठने को तैयार नहीं था। "मैंने पिछले हफ़्तों में तुम्हारे साथियों का इन्टैलैकचुअल-हम्बग दस बार सुना और चूँ नहीं की। अब जरा बारी है साफ स्वस्थ मर्दानी बातचीत की और मैं मौका नहीं खो सकता। यह तुम्हारी नानसेन्स के लिए अच्छा रहेगा। यह मेरी बहन सीता है।"

श्याम ने अपना नाम बतलाया।

रनजीत को पहिचानने में श्याम को देर न लगी, उसके फौजी साथियों में उस तरह के लड़के और भी थे। वे लोग इस मेजर उस कर्नल को याद करने लगे। श्याम को लगा सीता ने चूँ तो नहीं की पर उस स्थिति के करीब पहुँच चुकी है।

"आप क्या यहाँ यूनिवर्सिटी में पढ़ रही हैं?"

"जी हाँ अँग्रेजी में रिसर्च कर रही हूँ।"

"समय बरबाद कर रही हैं कहो। लड़कियों का स्कालरशिप से क्या वास्ता। मैं तो ऊपर से कुछ भी दीखूँ, श्याम, पर ओल्ड फैशन्ड हूँ।"

साफ जाहिर था कि रनजीत अपने ऊपर और अन्दर दोनों से पूर्णतः सन्तुष्ट था। श्याम ने कहा, "अँग्रेजी में, हिन्दुस्तान में तो रिसर्च जरा मुश्किल ही होगी" रनजीत की बात अभी खतम नहीं हुई थी।

"भई श्याम हमारे जमाने में कौन रिसर्च करते थे। लड़के जो कम्पिटिशन्स में फेल रह जाते थे और लड़कियाँ जिनकी शादी नहीं हो सकती थी।"

"ओह रनजीत रहने दो अपने दिमाग की सीधी ड्रिल।"

"कुछ भी कहो सीता, मैं बात हमेशा सच कहता हूँ। अब तुम उस अपने पेन्टालून—माफ करना मुझे तो मिस्टर जितेन्द्र, एक पेन्टालून ही लगते हैं—उस मिस्टर जितेन्द्र को लो। अगर उन्हें सत्य के अन्वेषण से इतनी ही लगन है तो वे कम्पिटिशन्स में बैठना क्यों नहीं छोड़ते हैं?"

"रनजीत चुप रहो। बहुत सारी बातें तुम्हारी समझ से बाहर हैं। अब चलो।" श्याम ने भाई-बहिन की तकरार को सुनते रहने की शर्म झटके से महसूस की। मुड़ कर बेयरा को बुलाया।

बाहर आते ही सीता एक मिनट की अनुमति माँग बगल वाली किताब की दुकान से कुछ किताबें लेने चली गई। श्याम को बाहर ही रनजीत ने रोक लिया।

श्याम ने पूछा, "तुम लोग कैसे आए हो? कार?"

रनजीत ने सिगरेट जोर से फेंककर कहा, "कार! माई फुट! सीता को पैदल घूमना पसन्द है। इलाहाबाद की सड़कें इतनी सुन्दर हैं।···गजब है

इन लोगों के एडोलोसेंस की। फादर सीता को इलाहाबाद के लिए एक छोटी मरसेडीज़ देने को तैयार थे, पर कार शायद इंटैलैकचुअल नहीं है। खैर छोड़ो कभी अम्बाला आना, मेरा एडवांस आ गया है, मैं एक फिएट की कोशिश में हूँ।"

"तब मैं तुम लोगों को छोड़ आऊँगा।"

रनजीत एकदम शेवरलेट का खुलासा लेने लगा। "बोरिंग हो चुकी है ? पांइटस ? कितना मील करती है ?" इत्यादि। श्याम को यह सब कुछ नहीं मालूम था।

"मुझको यह सब नहीं मालूम है। पिताजी की कार है वही यह सब जानें।···कुछ भी समझो मेरे लिए कार सिर्फ एक मशीन है जिससे हम एक जगह से दूसरी जगह जा सकते हैं। स्लेव। कार से व्यक्तिगत संबंध करना मुझे नहीं गँवारा होता !"

रनजीत ने श्याम से कार की चाभी ली और कार को सफाई से बैक किया, फिर घुमाकर किताब की दुकान के सामने ले आ खड़ा किया।

सीता कुछ देर में दुकान से निकली, हाथ किताबों और मासिक पत्रिकाओं से भरे थे। रनजीत ने हॉर्न देकर उसका ध्यान आकर्षित किया। वह कुछ झिझक रही थी। श्याम ने कार का दरवाजा खोल, अपने घर ड्रॉप करने का निमंत्रण दुहरा सीता की दुविधा को पनपने का मौका ही नहीं दिया।

सीता ने श्याम से पूछा, "आपने किस यूनिवर्सिटी में पढ़ा था ?"

"मैं इलाहाबाद का ही रहने वाला हूँ। यहीं दो साल बरबाद किए थे।"

"आपके क्या सब्जैक्ट्स थे ?"

"फिजिक्स, कैमिस्ट्री, मैथ्स और क्रिकेट। तथा इसी चौथे विषय में मुझे विशेष योग्यता मिली।"

रनजीत ने खुशी में कहा, "तुम्हारा एक और पेपर रहा होगा उस्ताद।"

सीता ने कुछ सोचते कहा, "आपने क्या बी० एस-सी० उनचास में किया था।

"जी हाँ" रोकते-रोकते भी उसके मुँह से निकल गया, "श्री जितेन्द्रकुमार मेरे सहपाठी थे। हमारे साल फैकल्टी में उन्होंने टॉप भी किया था।"

सीता ने बाहर देखते हुए कहा, "रनजीत, तुम किस सड़क से चले आए हो।"

"ओह! घर पास था, हम लोग जरा ड्राइव को जा रहे हैं। मैं जरा शैवरले का पिकअप महसूस करना चाहता हूँ।"

× × ×

श्याम को जितेन्द्रकुमार एक शरमीला-सा लड़का याद था। होस्टल में नहीं, घर से आता था, सदा फर्स्ट बेंच में बैठने वाला। उसकी सीधाई की भी धाक थी। क्लास की दोनों लड़कियाँ—एल्फा और बीटा (मिस निगम और मिस पुरी) भी प्रयोगों में जितेन्द्र से ही मदद लेती थीं। श्याम से उसने लाइब्रेरी कार्ड माँगा था, शरमाते हुए, "यदि आपको जरूरत न हो वगैरह।"

श्याम ने उस तारीख तक लाइब्रेरी का उपयोग तो दूर रहा कार्ड तक नहीं बनवाया था। जितेन्द्र ने ही कार्ड बनवाया और अपने पास रखा। श्याम ने दूसरे साल बरेली कालेज के खिलाफ सैंचुरी बनाई थी। क्लास के लड़के कंधों पर उठाकर लाए। दूसरे दिन क्लास में जितेन्द्र कुमार ने भी बहुत झिझकते हुए उसे बधाई दी थी। अरे उससे तो मुँहफट और आँख मिलाने वाली एल्फा और बीटा ही थीं।

पिताजी की और प्रोफेसर कान्त की शतरंज हो रही थी। वह बरामदे से न निकल कर कमरे में चला आया।

"कान्त साहब आप तो इन्हें जानते होंगे। मेरे साहबजादे जनाब श्याम। किसी किस्म के लेफ्टीनेन्ट हैं। आजकल कश्मीर में मोर्चा लिए हैं।"

कान्त साहब जरा किताबी व्यक्ति हैं और वर्दी वालों से घबराते हैं। "बैठो, बैठो, छुट्टी में आए हो। इलाहाबाद डल लगता होगा।"

"जी नहीं।"

फिर उसने कान्त साहब से पूछा, "एक मेरा सहपाठी था, कान्त साहब, जितेन्द्र कुमार। क्या आपके अन्डर रिसर्च कर रहा है।"

"हाँ हाँ, बड़ा मेधावी लड़का है। बहुत मेहनती।"

श्याम ने जितेन्द्र कुमार के बारे में कुछ और पूछा।

पिताजी को शतरंज में खलल पसन्द नहीं है। "इस सहपाठी पर आपके

क्या रुपये बाकी हैं जो आप उनकी इतनी जाँच पर जुटे हैं।"

"जी नहीं, बात यह है कि मेरे एक कमाडिंग अफसर की लड़की की शादी की बात उनसे चल रही है, उन्होंने पूछा था।"

शादी के नाम पर कान्त साहब की बाछें खिल गईं। ऐसे विषय पर सदा उनके चेहरे पर सुख झलक जाता था। पिताजी अपने सदा के व्यंग्यमय चेहरे पर आ गए।

"श्याम लिख दो लड़का ऐबदार और शादी के लायक नहीं।"

"पर वकील साहब जितेन्द्र तो सिगरेट तक नहीं पीता।"

"प्रोफेसर साहब आप पर मैं आश्चर्य करता हूँ। आपके मस्तिष्क में फिजिक्स का दीर्घ ज्ञान कैसे आ गया जब कि व्यवहारिक ज्ञान के पहले एक्जियमस आपकी समझ में नहीं आए।...उस लड़के में कोई जरूर ऐब होगा जो श्याम के भी बाद बेकार बैठा हो। अपनी जेनरेशन में सबसे आखिर में हाथ-पाँव हिलाने की इन्होंने ठानी थी।"

"पिताजी हो सकता है कि वह सत्य की खोज में लगा हो?"

"हो सकता है!" पिताजी ने ऐसे दुहराया जैसे कि श्याम ने ऐब का उदाहरण दिया हो।

दूसरे दिन पूछताछ करता हुआ श्याम जितेन्द्र के घर पहुँचा। बाहर उसका छोटा भाई बैठा एक केक बिस्कुट वाले का हिसाब लगा रहा था। श्याम ने अपना अभिप्राय बतलाया।

"जितेन भाई साहब आज किसी से नहीं मिलेंगे। कमरा बन्द करके रो रहे हैं।"

"क्या?"

"कमरा बन्द करके, रेडियो सिलोन चल रहा है तख्त पर मुँह किए लेटे हैं। उन्होंने अपना पिस्तौल निकाल रखा है।"

"नानखताई का हिसाब बाद में करना। उनसे कहो उनका दोस्त कश्मीर से आया है।"

छोटे भाई ने आकर सिर हिलाया। "दरवाजा बन्द है, कह रहा हूँ वह रो रहे हैं। किसी अमरीकी ने उनका इजाद पहले कर लिया है। अब जिन्दगी में उनके लिये क्या है। पाँच साल बेकार घिस-घिस की।"

सीता ने बाहर देखते हुए कहा, "रनजीत, तुम किस सड़क से चले आए हो।"

"ओह! घर पास था, हम लोग जरा ड्राइव को जा रहे हैं। मैं जरा शैवरले का पिकअप महसूस करना चाहता हूँ।"

× × ×

श्याम को जितेन्द्रकुमार एक शरमीला-सा लड़का याद था। होस्टल में नहीं, घर से आता था, सदा फर्स्ट बेंच में बैठने वाला। उसकी सीधाई की भी धाक थी। क्लास की दोनों लड़कियाँ—एल्फा और बीटा (मिस निगम और मिस पुरी) भी प्रयोगों में जितेन्द्र से ही मदद लेती थीं। श्याम से उसने लाइब्रेरी कार्ड माँगा था, शरमाते हुए, "यदि आपको जरूरत न हो वगैरह।"

श्याम ने उस तारीख तक लाइब्रेरी का उपयोग तो दूर रहा कार्ड तक नहीं बनवाया था। जितेन्द्र ने ही कार्ड बनवाया और अपने पास रखा। श्याम ने दूसरे साल बरेली कालेज के खिलाफ सैंचुरी बनाई थी। क्लास के लड़के कंधों पर उठाकर लाए। दूसरे दिन क्लास में जितेन्द्र कुमार ने भी बहुत झिझकते हुए उसे बधाई दी थी। अरे उससे तो मुँहफट और आँख मिलाने वाली एल्फा और बीटा ही थीं।

पिताजी की और प्रोफेसर कान्त की शतरंज हो रही थी। वह बरामदे से न निकल कर कमरे में चला आया।

"कान्त साहब आप तो इन्हें जानते होंगे। मेरे साहबजादे जनाब श्याम। किसी किस्म के लैफ्टीनेन्ट हैं। आजकल कश्मीर में मोर्चा लिए हैं।"

कान्त साहब जरा किताबी व्यक्ति हैं और वर्दी वालों से घबराते हैं। "बैठो, बैठो, छुट्टी में आए हो। इलाहाबाद डल लगता होगा।"

"जी नहीं।"

फिर उसने कान्त साहब से पूछा, "एक मेरा सहपाठी था, कान्त साहब, जितेन्द्र कुमार। क्या आपके अन्डर रिसर्च कर रहा है।"

"हाँ हाँ, बड़ा मेधावी लड़का है। बहुत मेहनती।"

श्याम ने जितेन्द्र कुमार के बारे में कुछ और पूछा।

पिताजी को शतरंज में खलल पसन्द नहीं है। "इस सहपाठी पर आपके

क्या रुपये बाकी हैं जो आप उनकी इतनी जाँच पर जुटे हैं।"

"जी नहीं, बात यह है कि मेरे एक कमाडिंग अफसर की लड़की की शादी की बात उनसे चल रही है, उन्होंने पूछा था।"

शादी के नाम पर कान्त साहब की बाछें खिल गईं। ऐसे विषय पर सदा उनके चेहरे पर सुख झलक जाता था। पिताजी अपने सदा के व्यंग्यमय चेहरे पर आ गए।

"श्याम लिख दो लड़का ऐबदार और शादी के लायक नहीं।"

"पर वकील साहब जितेन्द्र तो सिगरेट तक नहीं पीता।"

"प्रोफेसर साहब आप पर मैं आश्चर्य करता हूँ। आपके मस्तिष्क में फिजिक्स का दीर्घ ज्ञान कैसे आ गया जब कि व्यवहारिक ज्ञान के पहले एक्जियमस आपकी समझ में नहीं आए।...उस लड़के में कोई जरूर ऐब होगा जो श्याम के भी बाद बेकार बैठा हो। अपनी जेनरेशन में सबसे आखिर में हाथ-पाँव हिलाने की इन्होंने ठानी थी।"

"पिताजी हो सकता है कि वह सत्य की खोज में लगा हो?"

"हो सकता है!" पिताजी ने ऐसे दुहराया जैसे कि श्याम ने ऐब का उदाहरण दिया हो।

दूसरे दिन पूछताछ करता हुआ श्याम जितेन्द्र के घर पहुँचा। बाहर उसका छोटा भाई बैठा एक केक बिस्कुट वाले का हिसाब लगा रहा था। श्याम ने अपना अभिप्राय बतलाया।

"जितेन भाई साहब आज किसी से नहीं मिलेंगे। कमरा बन्द करके रो रहे हैं।"

"क्या?"

"कमरा बन्द करके, रेडियो सिलोन चल रहा है तख़्त पर मुँह किए लेटे हैं। उन्होंने अपना पिस्तौल निकाल रखा है।"

"नानखताई का हिसाब बाद में करना। उनसे कहो उनका दोस्त कश्मीर से आया है।"

छोटे भाई ने आकर सिर हिलाया। "दरवाजा बन्द है, कह रहा हूँ वह रो रहे हैं। किसी अमरीकी ने उनका इजाद पहले कर लिया है। अब जिन्दगी में उनके लिये क्या है। पाँच साल बेकार घिस-घिस की।"

छोटा भाई यह कहकर फिर चाकलेट क्रीम, रोल्स में फँस गया।

श्याम ने छोटे भाई को अलग छोड़ा और कमरे की ओर बढ़ा। कमरे से सिनेमा संगीत हल्के स्वर में आ रहा था। उसने दरवाजा थपथपाया और जितेन्द्र का नाम पुकारा। भाग्य साथ था; रेडियो बन्द हुआ और दरवाजा खुला। इन पाँच-छह साल में जितेन्द्र दो एक इंच लम्बा हो गया था, पर वही दुबला चेहरा और दुबला बदन था।

कमरे में एक तख्त था। मेज और उस पर लगी कुर्सी पर तो किताबें ही थीं।

"मुझे भूल तो नहीं गए जितेन्द्र। बी०एस-सी० में क्लास फैलो थे हम लोग। कल तुम्हारे बारे में मालूम हुआ। चला आया।"

"हाँ हाँ मुझे तुम अच्छी तरह याद हो श्याम। यहीं बैठो। मैं जरा मुँह धो आऊँ।"

जितेन्द्र सच में रोता रहा था। कमरे में आइन्सटीन और सुभास बोस की तस्वीर लगी थी। किताब-कागजों में ज्यादा संख्या रिसर्च से संबंधित थी। एक पूरा गट्ठा सैक्स की किताबों का था। वैनडी वेल्ड से लेकर हरशैल की एबेरेशन्स की इन्साइक्लोपीडिया तक। कई पापुलर मनोविज्ञान की किताबें थीं जो विज्ञापन के अनुसार खाविंद और बीबी की समस्या हल कर देती थी। कुछ फिल्म की मैगजीनें थी। अलमारी के एक कोने में लेमनचूसों के दो खाली और एक नया डिब्बा रखा था। उसी के पास एक मिल्क मेड का डिब्बा था जिसमें एक चम्मच पड़ी थी।

श्याम ने बात चलाने को सुभाष बोस की ओर इशारा किया "यार क्या फासिस्ट हो गए हो!"

जितेन्द्र ने वही अपनी भावुक आवाज में छोटा-सा उत्तर दिया, "हाँ मुझे डेमोक्रेसी में विश्वास नहीं।"

अब तो कोई छूट नहीं थी। उसने फिर कोशिश की, "तुम्हारे भाई साहब दीखता है मिठाई के बड़े शौकीन हैं। बाहर पेस्ट्री खरीद रहे हैं यहाँ डिब्बे के डिब्बे खाली किए हैं।"

"ये लैमननचूस मैं खाता हूँ। क्योंकि मुझे पसन्द हैं। क्योंकि मुझे अच्छे

लगते हैं—और यह मिल्क-मेड का कनडेन्सड मिल्क यह भी मैं चमचे से वैसे ही खाता हूँ। मुझे बहुत पसन्द है।"

जितेन्द्र ने ऐसे बात खतम की कि अब श्याम जितनी नाक भौं सिकोड़ना चाहे सिकोड़े।

श्याम हँस पड़ा। "नाराज क्यों होते हो। मैं इस सबको समझ सकता हूँ। बहुत सारे वैज्ञानिकों की राजनैतिक और खाने की रुचियाँ आश्चर्यजनक होती हैं।"

श्याम ने कहा, "मैंने सुना है कि तुम्हें अपनी रिसर्च के संबंध में कोई बुरी खबर मिली है? क्या बात थी?" जितेन्द्र ने फिर सर झुका लिया। "मैं एल्कली साल्ट्स के लेड एक्सैक्ट्स पर खोज कर रहा था। सब जॅरनल वगैरह देखे थे। कहीं किसी में कोई काम नहीं था। चार साल बराबर रात-रात बैठ कर डाटा तैयार किया। डाक्टर सेठ तो कह रहे थे सीधे थीसिस सबमिट करो, पेपर वगैरह छपाना बाद में। उन्हें इस तरह का तजुर्बा था। पर मैंने श्याम, मैंने शान में दो पेपरस जॅरनल में छपाए। अमरीका में एनफील्ड ने जवाब भेजा और ये कुछ पेपरस हैं। उनके यहाँ दस साल से इसी पर काम हो रहा है, २० तो पेपर यहीं हैं, मुझसे चौगुना डाटा तो यहीं है।"

जितेन्द्र एकदम चुप हो गया। श्याम ने एक सिगरेट जलाई।

"यह खबर तुम्हारे पास कब आई?"

"आज मिली है। और श्याम सोचो कल मैं अपने आपको अनुसन्धान में प्रथम समझता था। एनफील्ड के लैब एसिसटेण्ट्स के लिए मेरे फारमूले साधारण चीज होगी। सोचो। सोचो।"

श्याम ने कुछ देर बाद पूछा, "जरा अपनी पिस्तौल दिखलाना।"

जितेन्द्र का चेहरा शरम से लाल हो गया।

"उसकी कोई फिकर नहीं। मैं कायर हूँ।"

"अरे मैं तुमसे छीन नहीं रहा हूँ। जरा दिखलाओ तो सही।"

·३४ का पुराना रिवाल्वर था। चैम्बर में दो गोलियाँ थी। अन्दर जंग लगा था और हैमर सिनक्रौनाइज नहीं कर रहा था। श्याम ने रिवाल्वर लौटा दी। जितेन्द्र ने उसे दूर एक कोने में फेंक दिया।

"जितेन्द्र सच बतलाओ क्या यह खबर तुम्हारे लिये बहुत असहनीय है।" जितेन्द्र अपने से जूझता जवाब देने लगा।

"यह बात तो नहीं है कि यह घटना मेरे ही साथ हुई हो। भारतीय अनुसन्धान का यही हाल रहता है। डाक्टर सेठ का क्रिस्टल पर सारा काम हो चुका था। फिर काम हो चुका भी नहीं कहना चाहिए—विषय एक होता है, डाटा के तो विभिन्न सेट होते ही हैं। भारत में थीसिस जाँचनेवाले और देनेवाले यह बात जानते हैं। पर···"

"तुम समझते थे कि कम से कम तुम इस तरह के नहीं हो। डाक्टर सेठ को मैं खूब जानता हूँ, उसे तो मालूम रहा होगा तो दाब के बैठ गया होगा।"

"लगता है कि मैं अब किसी की तरफ आँख नहीं उठा सकूँगा।"

श्याम चुप रहा। थोड़ी देर बाद श्याम ने पूछा, "उसके अलावा, अब तुम थीसिस सबमिट कर रहे हो या नहीं? डॉक्टरेट तो ले ही लो अगर मिल सकती है, नौकरी मिल जाएगी। यह भी तो जरूरी है।"

जितेन्द्र ने ठोढ़ी ऊपर कर कहा, "पर नौकरी लग जाने से भी कुछ महत्त्व-पूर्ण बातें हैं।"

श्याम को जितेन्द्र की सीधाई पर गुस्सा आया। "डिग्री और नौकरी को कौन महत्त्व दे रहा है। मैं या तुम। मैं तो उन्हें जिस दाम मिलें उस दाम पर ले लेने लायक चीजें समझता हूँ; तुम्हीं उन्हें कोई खास दाम चुकाना चाहते हो।···यदि तुम्हें काम करना है नौकरी मिलने पर उसकी भी सहूलियत होगी। इन व्यवहारिक चीजों और अपने आदर्शों का क्यों सम्बन्ध बना लेते हो।"

जितेन्द्र चुप रहा। श्याम को अपने पर खीझ हुई। "खैर वही करो जो तुम्हें ठीक लगे। फौज में जाने से मेरे मॉरल्स शायद साधारण जीवन के अनुपयुक्त हो गए हैं।"

जितेन्द्र ने थोड़ी देर बाद उत्तर दिया। "पर श्याम आदमी कमजोर होता है और अपने ही मन को समझाने पर क्या विश्वास! हम भुलावे के क्षण कुछ भी मान लेते हैं, संशय के क्षण कुछ भी नहीं मान पाते हैं। अपने से बाहर अपने में विश्वास करने को सहारा चाहिए ही।"

"ठीक है। पर मैं तो समझता था कि तुम्हारे पास ऐसा सहारा था।"

× × ×

इसके एक हफ्ते बाद रनजीत की पिकनिक थी। "यार तेरी और मेरी छुट्टियाँ खतम हो गई हैं। एक ब्रिज हो जाय।"

"हो जाय, पर रनजीत यह इलाहाबाद···"

"घबराओ नहीं, मिसेज कटारिया को देखना।"

पार्टी जमुना के किनारे एक रईस के आम के बाग में थी। मिसेज कटारिया और दो पति-पत्नी, श्याम, रनजीत और सीता को छोड़ और थे। पूरे चाँद की वजह से अँधेरा नहीं था। पंजाबी दम्पति रनजीत और मिसेज कटारिया पार्टी की जान बने थे। ग्रामोफोन, हो-हल्ला। श्याम ने देखा सीता चुप सिर झुका कर बैठी रहती। मिसेज कटारिया ने लता मंगेश्वर के गाने पर नृत्य शुरू कर दिया। बातचीत जरा बेतकल्लुफ हो गई।

श्याम ने सीता से कहा, "आप ज्यादा खुश नहीं दिखलाई पड़तीं।" सीता ने मिसेज कटारिया के बार-बार दुहराए स्लोगन में उत्तर दिया, "जान पुराने चावलों में ही मिलेगी" श्याम को सीता की तीखी घृणा से डर लगा।

रनजीत सब को सोमरस पिला रहा था। पर दीखने को हँडिया में रखा रस-मलाई का दूध-रस था। पर जबान से लगते ही श्याम ने जान लिया था कि रनजीत के कोट में रखी जिन की आधी बोतल इसमें जा चुकी है।

"मिसेज कटारिया, मुँह और खोलिए।"

मिसेज कटारिया ने हाँफ कर कहा, "हाय-हाय पिलाते हो नहीं। ऊपर लिये खड़े हो। अरे!"

रनजीत ने उसी वक्त दूध ढलका दिया था।

"मैं तो सब भीग गई। नॉटी नॉटी" रनजीत मिसेज कटारिया, पंजाबी दंपतिं किल्कारी मार हँसने लगे।

मिसेज कटारिया ने अपने ब्लाउज को छू "ओ सब चिप-चिप।"

पंजाबी बीबी ने कहा, "उतार डालिये मिसेज कटारिया, नहीं तो चीटियाँ चढ़ जाएगीं। यहाँ बहुत हैं देखिये जी।"

हँसी। मिसेज कटारिया रोष का मुँह खुशी में बना रहीं थीं। रनजीत ने हँसी के ऊपर कहा "मिसेज कटारिया और यदि आपको मदद चाहिये···"

श्याम ने मुड़ कर देखा। सीता नहीं थी।

श्याम ढूँढ़ता हुआ, जमुना के किनारे पहुँचा। एक किले की टूटी दीवार तट तक गिरी थी। नदी काफी नीचे दीखती थी।

श्याम पास आ मुड़ कर लौट जाने की सोच रहा था। सीता ने नदी की ही तरफ देखते हुए कहा, "आइये यहीं बैठ जाइए।"

"मैं आपका एकान्त नहीं तोड़ना चाहता। वहाँ से आप एकाएक चलीं आई थीं, मैंने सोचा कुछ···। आपको इन बातों से इतना व्यग्र नहीं होना चाहिए। सुख हम सबको दयनीय बना देता है।"

सीता ने तिरस्कार के स्वर में कहा, "एनज्वॉइंग लाइफ, फन।"

श्याम ने जैसे बहस शुरू करते हुए कहा "हाँ है तो असुन्दर। पर आपकी वह सत्यं शिवं सुंदरं और स्पिरिट के जीवन की भी वे मौका झलक दीख सकती है। इतनी ही कुरूप।"

चुप्पी में जमुना निहारने के सिवा कुछ नहीं किया जा सकता था।

सीता ने उससे दूसरे ही तरफ देखते कहा, "जितेन्द्र बतला रहा था कि आप उससे मिले थे। और आपको खुशी होगी जान कर कि उसने आपकी बात मान ली है।"

नई खबर के प्रभाव में श्याम ने सीता के स्वर का ख्याल नहीं किया।

"अच्छा। तो थीसिस सबमिट कर रहा है। यह ठीक है।"

"आप बहुत श्योर मालूम होते हैं?"

"क्यों नहीं? डॉक्टरेट को देवता बनाना महा मूर्खता है।"

सीता के स्वर का व्यङ्ग अब तो स्पष्ट था। "यानी आपके विचार से उन्हीं को देवता बनाना चाहिए जिनसे सहूलियत हो।"

श्याम को गुस्सा आया पर उसने सम्हाल कर उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता कि मेरी धारणा का सवाल यहाँ उठता है। खैर आप मेरी बात पूछती हैं। मैं देवताओं से युद्ध करने में विश्वास रखता हूँ, इन पर दरवाजा बन्द रखने और धूप जलाने में नहीं। वही देवता है जो बच रहें।"

"हाऊ, लाइक ए सोल्जर!" श्याम को अपने उत्साह पर झेंप आई।

श्याम बात अपनी ओर नहीं आने देना चाहता था।

"तो आपको जितेन्द्र का निर्णय पसन्द नहीं आया।"

"आप तो जितेन्द्र-सी बातें कर रहे हैं। तय वह करे और तय करने का भार मैं लूँ।"

"यदि ऐसा कह रहा है तो कोई नाजायज बात तो नहीं कह रहा है। व्यक्तिगत संबंध में दूसरे की ऐसी जरूरत तो होती ही है। मैंने तो सुना था..."

"आपने गलत सुना था" सीता ने तेजी से कहा, "मैं जितेन्द्र की विभिन्नता का आदर करती थी। अब वह नहीं रही।"

"ओह" श्याम ने सिगरेट निकाल कर जलाई। माचिस उठाते हुए उसके हाथ गुस्से से काँप रहे थे।

"तो आपके प्रेम बने रहने के लिए उसे क्या करना चाहिए था। थीसिस न सबमिट करे। उसने किसी की नकल नहीं की। उसके अपने विभिन्न प्रयोग थे। यदि दुनिया के दूसरे कोने में कोई और भी वह प्रयोग कर रहा हो या कर चुका हो तो उसमें जितेन्द्र की क्या कमी है।"

सीता उसकी तरफ देखने लगी थी।

"मुझे यह सब नहीं मालूम। मुझे तो वह रात मालूम है जब जितेन्द्र ने मुझे आकर बताया। डिगरी मिल जाएगी, नौकरी लग जाएगी। अखिर किए काम को रद्दी बनाने से तो कोई फायदा नहीं। मुझे वह क्षण याद है वह जितेन्द्र याद है। मुझे लगा कि यह आदमी यदि कमरे में कुछ देर और रहा तो मैं चीख उठूँगी।"

"नौकरी वगैरह से वह आपसे शादी कर सकता था। उसने आपका विश्वास माँगा था और आप उसे न दे सकीं। उसके अधकचरे व्यक्तित्व पर आपको आपत्ति नहीं थी—बेसमझ फासिज्म, या मिठाई की लत या तीन कौड़ी के मैलो ड्रामा। असली में सीता तुम जितेन्द्र की जरूरत नहीं बनना चाहतीं थी, वह तुम्हारे लिए जरूरत था। तुम्हारे मैलो ड्रामा को बनाये रखने के लिए रंग।"

"आप समझते है मैंने कोशिश नहीं की। तीन दिन अपने को तड़पाती रही। पर मन से वह कल ही गुम हो गई थी जिससे जितेन्द्र के नाम पर ही मन एक कोमलता से मूढ़ हो जाता था। अब मुझे उसके गन्दे नाखून, या

लैमन्चूसों से भरी जेब या मेलोड्रामा याद आता। "पहले उसका अधकचरापन एक विभिन्नता के साथ जुड़े होने के कारण असाधारण हो जाता था। और अब जब वह भी सब साधारण लोगों की तृति की सड़क में आ गया था अधकचरापन, अधकचरापन ही लगता था। मैं अपने को माफ नहीं कर रही हूँ, न शायद कर सकूँ। अब उसकी हर एक दयनीयता मेरे खिलाफ और गहरा इल्जाम लगाती है। पर सच तो यही है।"

"देवता विसर्जित होने के बाद पूजे नहीं जा सकते।"

पीछे से हर तरह की आवाजें करते रनजीत वगैरह उन पर आ धमके।

सवेरे पिताजी के साथ श्याम नाश्ते पर था। अखबार पर टिप्पणी हो रही थी। नौकरने आकर कहा, "श्याम भइया एक साहब आपसे मिलने आए हैं। मुझे तो जरा खपती मालूम पड़ता है। मैंने कहा नाश्ते पर हैं तो कहने लगा कहना जिन्दगी-मौत का सवाल है।"

श्याम ने पिताजी से आज्ञा माँगी। "कानून की सलाह की जरूरत हो मुझसे ले लीजियेगा।"

बाहर केन की कुर्सियों पर जितेन्द्र बैठा था। श्याम को उसके चेहरे से आशंका हुई। "बाहर क्यों बैठे हो जितेन्द्र, अन्दर आ जाओ हम लोग चाय पी रहे थे। आओ।"

"नहीं-नहीं मुझे यहीं रहने दो। जो कुछ भी मुझे कहना है वह यहीं कह लूँ। तुम चाहो तो न भी सुनो पर मैं तो सुनाना चाहता ही हूँ। तुम अब भी चाहो तो मुझे घर से निकाल सकते हो···"

"जितेन कैसी बातें कर रहे हो। तुम्हारा मन खराब है और तुम रात भर सोए नहीं मालूम पड़ते हो। ठहरो मैं तुम्हारे लिए चाय मँगा दूँ फिर इस सबका कारण बतलाना।"

"बैठे रहो श्याम। तुम मेरे घर उस दिन क्यों आए थे? क्यों आये थे! महान् क्रिकेटर लैफ्टीनेन्ट श्याम को एकाएक कैसे मेरी याद उमड़ आई थी···बोलो।"

जेब में सिगरेट नहीं थी। श्याम बहुत सादे आसान उत्तर दे सकता था। जितेन्द्र को डाँट भी सकता था पर चुप रहा।

"कश्मीर के हीरो क्यों मेरी कुटी को पाक करने आए थे। क्यों मुझे दुनियादारी की सीख दे रहे थे ? बतलाओ।"

"बात क्या है जितेन्द्र ! यह सब जवाबदेही लेने का क्या अभिप्राय है। मैंने तुम्हें बतलाया था कि मुझे तुम्हारे बारे में जिज्ञासा, क्यूरिआसिटी, हुई थी और उसी कारण मैं तुम्हारे पास गया था।"

"किस बात की क्यूरिआसिटी ! तुम्हें तो मेरे बारे में कभी-कोई Curiosity नहीं थी। तुम क्या जानने आए थे। यही न कि मैं फासिस्ट, सिनेमा के गाने चला कर रोने वाला, टूटी पिस्तौल रखने वाला कैसे किसी सीता कुमारी के मन में जगह पा सकता हूँ।"

"मेरी तुम दोनों के बारे में, तुम लोगों के सम्बन्ध के बारे में जिज्ञासा अवश्य थी पर···"

"तुम्हारी भी सब लोगों की तरह से—सीता के भाई रनजीत की तरह से हमारे सम्बन्ध तोड़ने की इच्छा थी—और जहाँ और लोगों द्वारा उड़ाई मेरी मज़ाक सीता को मेरे पास लाती थी, तुम्हारा व्यङ्ग काम कर गया है। तुम हमारे बीच में होने आए थे श्याम झूठ न बोलो।···क्या कहा तुमने सीता से कि मैं उसे धोखा देता रहा हूँ, कि मैं रोता हूँ।"

जितेन्द्र सच में रोने लगा। इसकी आँख श्याम से लगीं थी, गाल पर आँसू बहने लगे, फिर धीरे-धीरे हिचकियाँ बँध गईं।

श्याम ने कहा, "जितेन्द्र तुम्हारी तबियत खराब है जरा ठहरो।"

पिताजी का अखबार टेबल पर रखा था। उन्होंने एक तैयार चाय के प्याले की ओर इशारा किया।

जितेन्द्र ने एक खाकी रूमाल निकाल चेहरा पोछ लिया। चाय पी ली। चाय का प्याला रकाबी पर रखे समय हो गया वह चुप रहा।

श्याम ने आहिस्ते स्वर में कहा, "जितेन्द्र जो तुमने बातें कहीं उन पर क्या तुम विश्वास करते हो ?"

जितेन्द्र ने ठोडी को हाथ में रख सोचते उत्तर दिया, "मुझे माफ करना एण्ड ऑल दैट। मैं सच में रात भर नहीं सोया था।···मैं समझ नहीं पाता हूँ कि सीता को एकाएक क्या हो गया वह मेरे साथ कमरे में नहीं रह पाती

है। उसका कहना है कि वह मेरा आदर नहीं कर सकती है। मैं अपना आदर खुद नहीं करता हूँ। चार साल मैंने जिस काम को महान् समझा वह एकाएक मामूली साबित हो गया। यह क्या कम है रिवैल्यूएशन के लिए। तब भी मैं तो वही हूँ, काफी-ज्यादातर हिस्से में वही हूँ। पार्ट एण्ड होल। श्याम मेरे लिए तो सीता अब भी वैसे ही है, होल; एक मेरी ओर उदार पार्ट बदल गया तो क्या।"

श्याम के पास कहने को कुछ नहीं था। "मेरे ख्याल में जितेन्द्र सीता बहुत यंग है, और मेरे ख्याल में उसके विचार बदल सकते हैं।"

छुट्टी खतम कर श्याम फ्रंट पर लौट आया। दस हजार फीट की ऊँचाई पर उसका पिकैट था। नीचे चैल नदी की घाटी थी और दूसरी तरफ पाकिस्तान। लड़ाई बुझ चुकी थी और दुश्मन के ज्यादातर पिकेट्स हट चुके थे। सिपाहियों-का भी रुख दूसरा हो चुका था। उसके पास विचारों में खोने को समय बहुत था। उसका कुमाउँनी आदमी बिना पूछे ही उसकी चाय, उस चट्टान पर रख आता था जहाँ से घाटी की नदी मुड़ते किनारे पर फेन से भर जाती थी।

श्याम को अकेलापन बुरा नहीं लगता था। कुछ दिनों बाद मन में विचारों का कोलाहल कम हो जाता और श्याम अपने मन में आनेवाली बातों को नोट करने की आदत भी खो बैठता था। सप्ताह, पन्द्रह दिन में सब पिकेट्स से अफसर बैटेलियन हेडक्वाटरस में जुटते, मेस-नाइट के लिये। देर रात तक शराब पी जाती और हल्ला किया जाता।

जवानों को बेचैनी और इनडिसीप्लिन से बचाए रखना ही उसके खास काम थे। श्याम ट्रेनिङ्ग कोर्स चलाता रहता था, हफ्ते में एक रोज, दो जवान नदी से मछली मारकर लाने की छुट्टी पाते थे। इस इजाजत के लिए जवान उसके पास आ बच्चों की तरह मचलते। फिर जाड़े आ गए। पहली बरफ— सिपाहियों ने गुड़ मँगवा रखा था और बरफ को गुड़ के साथ खाने का उत्सव रहा। श्याम के लिये उसका कुमाऊनी बरफ एक तश्तरी में सजा कर लाया! पर बरफ रोज पड़ने लगी और उनकी दुनिया उस बेरहम श्वेत प्रसाद में टापू-सी हो गई। रेजीमेन्टल एच-क्यू तक की राह भी फँस गई। जाड़ों के खास कपड़े निकाले गए। श्याम पिछले साल गुलमर्ग में विन्टर स्पोर्टस की

ट्रेनिंग ले चुका था, उसने जवानों की ट्रेनिंग शुरु की। दो मील पूरब और डेढ़ हजार फीट और ऊपर संगमरमर की ढलान थी जो स्कीइंग लायक थी। उससे उतरने के बाद घूमकर पिकेट पहुँचा जा सकता था। दो तीन रन का प्रोग्राम होता था और आस पास की पिकेट्स के अफसर भी आ जाते थे।

बरफ गलने लगी थी। उसे ब्रिगेड हेडक्वाटर पर स्पेशल ड्यूटी के लिये बुला लिया गया। यह जगह श्रीनगर के पास थी और पुराने पड़ाव पर होने के कारण साधारण नागरिक सुविधाएँ उपलब्ध थी। काम कांफी रहता, डेस्क वर्क। सड़क के साथ अनन्त क्षितिज तक जाते पोपलरस देखने को समय कम मिलता। सी ओ कर्नल हलदर को योरपीय-क्लैसिकल संगीत में चाव था और वे अक्सर शाम को रिकार्ड सुनने बुलाने लगे। उन्हें "लाइफा" पर विचार करने का भी चाव था।

"तुम्हें सच में बीथोविन के क्वारटेट्स पसन्द हैं? मुझे इनकी गम्भीरता, कुछ अंश में अवयक्तता और कुछ Formlessness से डर लगने लगती है। इनमें वायलिन कैसे बजता है, जैसे अपने मन से। मेरे लिए मोजार्ट हर दफा मोजार्ट। इसका स्वातंत्र्य कितना खुला है, सेन। क्वारटेट्स का बीथोविन किसी अव्यक्त से हठ करता रहता है, उसी में घुल-मिल कर।"

श्याम हँस कर कहता, "कर्नल साहब आपको तो म्यूजिक-क्रिटिक होना चाहिए था, लीजिए आपका प्रिय आइनक्लाइन नाक्त म्युजिक।"

जुलाई में एक साथ आर्डरस् आए, श्याम की रेजिमेंट बंगलोर जा रही थी और सैकिंड गोरखास उनकी जगह कश्मीर आ रहे थे। रंजीत और उसके साथी गाते हुए बिग्रेड हैडक्वाटर पर रिपोर्ट करने उतरे। उसे देखते ही रंजीत उसकी तरफ दौड़ आया और गले मिला।

"यार, एट लास्ट। मैं तो तंग आ गया था बॉय स्काउटस की तरह से वर्दी पहने। आखिर हम आर्मी में हैं या फैन्सी ड्रेस में। श्याम अब देखना हम लाहौर पहुँच कर ही बिगुल बजाएँगे।"

श्याम को रंजीत से मिल बहुत खुशी हुई थी।

"ये सब ख्याल छोड़ो। यहाँ भी बस बैठे रहना, बैठे रहना।"

"तुम लोगों की तरह से गोरखास डिफेंसिव में नहीं विश्वास करते। साले

अभी तक तुमने ड्रिंक भी नहीं ऑफर की।"

रंजीत सब तरह से बियर पीने में कुशलता पा चुका था।

"और सुनाओ।"

"तुम सुनाओ—कार खरीद ली?"

"कहाँ यार यही अफसोस रह गया। मन तय ही न कर पाया, ऐसे ही समय निकल गया। तुम्हारी शैवरले कैसी है, पर तुम्हें क्या मालूम हैं!"

श्याम से धैर्य न रखा गया। "तुम्हारी बहन सीता कैसी है? उनकी शादी··"

"शादी-वादी कुछ नहीं उसने तो अपने नाम को सार्थक करना शुरू कर दिया है। डैडी ममी अब इलाहाबाद ही आ गये हैं, उनके ही पीछे-पीछे रहती है। अन बैलेंसड तो थी ही। अब वह कहीं बाहर नहीं जाती। सवेरे पूजा घर में बैठकर पूजा करती है। मैंने तो कहा टी० एस० इलियट की जगह अब तुलसीदास खोलो।"

"अच्छा।"

रनजीत ने श्याम की आधी बोतल भी अपने डिकैन्टर में उँडेल ली। "एडोलेसेंस श्याम एडोलेसेंस, उसकी देरमें शुरू हुई थी, देर में खत्म हो गई थी। पर खैर डाक्टर्स कहते हैं ऐसे लोगों का फाइनल डैवलपमेंट अच्छा होता है।"

श्याम ने रनजीत को सिगरेट दे, अपनी जलाई।

रंजीत पर कुछ बियर चढ़ रही थी।

"लोग समझते हैं कि मैं गधा हूँ, पर आदमियों के मामले में धोखा नहीं खाता श्याम। अब वह पैन्टालून जितेन्द्र, खैर सीता ने आखिरकार उसे समझ ही लिया पर किसी को विश्वास नहीं होता था। अब स्वाइन के रंग देखो। साला अब की दफा कम्पिटिशनस में आ गया, एकदम भागा-भागा गया दिल्ली। सुना है गुलछर्रे उड़ा रहा है, गुलछर्रे।"

श्याम को रनजीत का क्रोध समझ में न आया। "तुम क्यों इतने नाराज हो रनजीत?"

"सुना है वहाँ सिनेमा इन्द्रानी के साथ जाता है। मैं कहता ये हर एक

माँ-बाप सिविल सर्विस देखते ही क्यों अपनी लड़कियों के गले में वेलकम की तख्तियाँ डाल देते हैं। नथिंग परसनल, यू नो। इन्द्रानी हमारी क्लास में थी—पटाका, इनसेन डियरी। मै कुछ फँसा-वसा नहीं था। यही सामने पड़ गई तो शरीफों की तरह से सीटी मार दी। मैं कहता हूँ यार शीयर वेस्ट। ऐसी लड़की कैसे सिनेमा के अंधेरे में अपना हाथ उस पेन्टालून की चिपचिपी मुट्ठी में देती है। पर लाइफ!"

श्याम ने कहा, "मेरे ख्याल से इस विचार को डुबाने के लिए स्कॉच पी जाए।"

× × ×

करनल हलदार ने कहा, "तुम्हारी सालाना छुट्टी का समय भी है। चले जाओ यहीं से, मैं बिसारिया को खबर दे दूँगा। छुट्टी के बाद बँगलोर में ज्वाइन कर लेना। हाँ, देहली में स्टाफ में जा रहा हूँ वहाँ तुम्हारे लिए भी जगह बनाने की कोशिश करूँगा।"

श्याम ने करनल साहब की उदारता का धन्यवाद दिया। वह मुड़ के जा रहा था कि करनल ने बुलाया।

"ये लो मैंने तुम्हारे प्रिय बीथोविन के क्वारटेट्स बिकवा दिए हैं। छुट्टियों में सुनना, मेरी तरफ से उपहार रहा।"

श्याम को इसकी जरा भी आशा नहीं थी, "करनल साहब आप यह क्या कह रहे हैं मैं तो म्यूजिक वगैरह जानता नहीं। अपका सेट टूट जाएगा। और फिर···"

"मैं इन्हें कभी बजाता नहीं हूँ। मुझे इनसे सदा भय लगता है।"

रनजीत ने विदा लेते कहा, "इलाहाबाद मेरे घर हो आना, खबर दे देना कि 'आइ एम गोइंग स्ट्रांग।' मेरा तो जाना हो या नहीं।"

"दो महीने में यह तुम्हारा हीरोइज्म खत्म हो जायगा। अच्छा, विदा।"

× × ×

पन्द्रह बीस मिनट डैडी और ममी को श्याम कश्मीर फ्रंट और रनजीत के सुखी होने के बारे में बतलाता रहा। उन लोगों के लिए यह स्वीकार करना कठिन था कि फ्रंट में कोई जीवन-भय नहीं है।

अभी तक तुमने ड्रिंक भी नहीं ऑफर की।"

रंजीत सब तरह से बियर पीने में कुशलता पा चुका था।

"और सुनाओ।"

"तुम सुनाओ—कार खरीद ली ?"

"कहाँ यार यही अफसोस रह गया। मन तय ही न कर पाया, ऐसे ही समय निकल गया। तुम्हारी शैवरले कैसी है, पर तुम्हें क्या मालूम हैं !"

श्याम से धैर्य न रखा गया। "तुम्हारी बहन सीता कैसी है ? उनकी शादी···"

"शादी-वादी कुछ नहीं उसने तो अपने नाम को सार्थक करना शुरू कर दिया है। डैडी ममी अब इलाहाबाद ही आ गये हैं, उनके ही पीछे-पीछे रहती है। अन बैलेसंड तो थी ही। अब वह कहीं बाहर नहीं जाती। सबेरे पूजा घर में बैठकर पूजा करती है। मैंने तो कहा टी० एस० इलियट की जगह अब तुलसीदास खोलो।"

"अच्छा।"

रनजीत ने श्याम की आधी बोतल भी अपने डिकेन्टर में उँडेल ली। "एडोलेसेंस श्याम एडोलेसेंस, उसकी देरमें शुरू हुई थी, देर में खत्म हो गई थी। पर खैर डाक्टर्स कहते हैं ऐसे लोगों का फाइनल डैवलपमेंट अच्छा होता है।"

श्याम ने रनजीत को सिगरेट दे, अपनी जलाई।

रंजीत पर कुछ बियर चढ़ रही थी।

"लोग समझते हैं कि मैं गधा हूँ, पर आदमियों के मामले में धोखा नहीं खाता श्याम। अब वह पैन्टालून जितेन्द्र, खैर सीता ने आखिरकार उसे समझ ही लिया पर किसी को विश्वास नहीं होता था। अब स्वाइन के रंग देखो। साला अब की दफा कम्पिटिशनस में आ गया, एकदम भागा-भागा गया दिल्ली। सुना है गुलछर्रे उड़ा रहा है, गुलछर्रे।"

श्याम को रनजीत का क्रोध समझ में न आया। "तुम क्यों इतने नाराज हो रनजीत ?"

"सुना है वहाँ सिनेमा इन्द्रानी के साथ जाता है। मैं कहता ये हर एक

माँ-बाप सिविल सर्विस देखते ही क्यों अपनी लड़कियों के गले में वेलकम की तख्तियाँ डाल देते हैं। नथिंग परसनल, यू नो। इन्द्रानी हमारी क्लास में थी—पटाका, इनसेन डियरी। मै कुछ फँसा-वसा नहीं था। यही सामने पड़ गई तो शरीफों की तरह से सीटी मार दी। मैं कहता हूँ यार शीयर वेस्ट। ऐसी लड़की कैसे सिनेमा के अंधेरे में अपना हाथ उस पेन्टालून की चिपचिपी मुट्ठी में देती है। पर लाइफ!"

श्याम ने कहा, "मेरे ख्याल से इस विचार को डुबाने के लिए स्कॉच पी जाए।"

× × ×

करनल हलदार ने कहा, "तुम्हारी सालाना छुट्टी का समय भी है। चले जाओ यहीं से, मैं बिसारिया को खबर दे दूँगा। छुट्टी के बाद बँगलोर में ज्वाइन कर लेना। हाँ, देहली में स्टाफ में जा रहा हूँ वहाँ तुम्हारे लिए भी जगह बनाने की कोशिश करूँगा।"

श्याम ने करनल साहब की उदारता का धन्यवाद दिया। वह मुड़ के जा रहा था कि करनल ने बुलाया।

"ये लो मैंने तुम्हारे प्रिय बीथोविन के क्वारटेट्स बिकवा दिए हैं। छुट्टियों में सुनना, मेरी तरफ से उपहार रहा।"

श्याम को इसकी जरा भी आशा नहीं थी, "करनल साहब आप यह क्या कह रहे हैं मैं तो म्यूजिक वगैरह जानता नहीं। अपका सेट टूट जाएगा। और फिर···"

"मैं इन्हें कभी वजाता नहीं हूँ। मुझे इनसे सदा भय लगता है।"

रनजीत ने विदा लेते कहा, "इलाहाबाद मेरे घर हो आना, खबर दे देना कि 'आइ एम गोइंग स्ट्रांग।' मेरा तो जाना हो या नहीं।"

"दो महीने में यह तुम्हारा हीरोइज्म खत्म हो जायगा। अच्छा, विदा।"

× × ×

पन्द्रह बीस मिनट डैडी और ममी को श्याम कश्मीर फ्रंट और रनजीत के सुखी होने के वारे में बतलाता रहा। उन लोगों के लिए यह स्वीकार करना कठिन था कि फ्रंट में कोई जीवन-भय नहीं है।

डैडी बोले, "वह सब तो ठीक है पर रनजीत डेसपेरेट होकर गया है। आपको उसने न बतलाया होगा। वह लड़का बड़ा शरमीला है, दिल की बात छिपाकर रखता है। ममी तुम्हें तो याद है कि कैसे रनजीत बचपन में अपने सिर के दर्द छिपा कर रखता था।"

श्याम ने रनजीत के मुँह बन्द रखने पर हामी भरी।

डैडी बोलते रहे, "वह इलाहाबाद पिछली दफा इन्द्रानी सियाराम की बात करता रहता था। उस लड़की की शादी कहीं और तय हो गई है। मिस्टर श्याम ऐसी बातें रनजीत की उम्र में बहुत महत्त्व की होती हैं। मुझको यही डर है कि कहीं वह कुछ कर न डाले। हम लोगों को तो डर लगा ही रहेगा। बचपन से ही वह बहुत गम्भीर था बात दिल में रखने वाला।"

सफेद साड़ी और ब्लाउज पहने सीता कमरे में आई। डैडी और मम्मी के कमरे से जाने की कोई आशा नहीं थी।

सीता बातचीत में कोई हिस्सा नहीं ले रही थी। सिर भी झुकाए थी।

श्याम ने रनजीत प्रवाह से जरा हटते सीता से पूछा, "आपकी थीसिस कैसी चल रही है।"

"ओह, चल रही है, एक दिन शायद खत्म भी हो जाए।"

डैडी बोले, "हम लोग तो सीता से कहते हैं कैम्ब्रिज चली जाओ यदि डॉक्टरेट लेनी है, नहीं तो जरूरत किस बात की है।"

श्याम को लगा कि उसकी सब बातचीत समाप्त हो चुकी है। उसने उठ कर विदा माँगी। कार में आकर बैठा था, कि बगल में सीट पर पड़े करनल हलदर के रिकार्ड्स दीखे। वह उन्हें लेकर फिर उतर गया।

ड्राइंग रूम खाली था। उसने दरवाजे का काँच ठकठकाया। सीता परदे से लौट कर आई पर उस ही के पीछे ममी भी।

"मैं यह भूल गया था। मुझे और रनजीत को ये रिकार्ड्स सुनने में बहुत पसंद थे। उसने सोचा था कि ये आपको भी पसंद आयेंगे।"

इसके पहले कि सभी कोई सवाल पूछें श्याम ने सीता के हाथ में वह बंडल दिया और मुड़ गया। श्याम को अपने किए कृत्य पर शरम आने लगी। वह जल्दी से भाग कर अपने साधारण जीवन में लौट जाना चाहता था। पर कभी-

कभी सब बातें आदमी को बेवकूफ बनाने पर तुली होती हैं। पुरानी शेवरले ने स्टार्ट होने से जवाब दे दिया। श्यामने चोक खींचा, बन्द किया, पर गाड़ी उतनी ही चुप रही। मर्यादा रखने को श्याम ने कार का हुड खोला, पर अन्दर के इंजन में श्याम कुछ नहीं पहिचानता था।

"क्या नही चल रही ?"

सीता पीछे खड़ी हाथ में चाभी घुमा रही थी।

"मुझे सिर्फ कार चलाना ही आता है, इसके कल-पुर्जों का अंदाज नहीं है।"

"तो आइये। मैं सिविल लाइन्स जा रही हूँ। वहाँ से मिस्त्री को ले आयेंगे।"

"अरे आप यह तकलीफ क्यों उठाती हैं। मैं चला जाऊँगा, कार की मरम्मत हो जाएगी।"

सीता ने एक क्षण रुक कर कहा, "मैं तो सिविल लाइन्स ग्रामोफोन की सुइयाँ लेने जा ही रही थी। चलिए।"

सड़क पर आते ही सीता ने कहा, "रिकार्डस् के लिए धन्यवाद। ये मैंने कभी सुने नहीं।"

श्याम ने प्रपंच से थक कर कहा, "मुझे माफ कीजिएगा मैं आपकी ममी के सामने झूठ बोला।"

सीता की आँखे ड्राइव करने में सड़क पर ही रहीं। "ममी शायद यह भी मान लेंगी कि रनजीत बीथोविन सुनकर पसंद कर सकता है।"

दूकान में अन्दर जा सीता सुइयों का डिब्बा ले आई।

"अब आपका गैरेज कौन सा है। हम लोग तो न्यू मोटरस्..."

"आइये" श्याम सीता को उस रेस्टराँ में ले गया जहाँ एक साल पहले वे मिले थे। सीता को सामने बैठा लेने के बाद श्याम ने कहा—

"रनजीत की बातों से तो लगा था कि मैं आपको संगम वगैरह में ही पा सकूँगा।"

"आपने क्या पाया ?"

श्याम ने सिगरेट जलाई और कॉफी का आदेश दिया।

"आपके कमरे में आने के पहले आपके डैडी बतला रहे थे कि जितेन्द्र का विवाह किन्हीं इन्द्रानी सियाराम से तय हो गया।"

"पिछले साल भी क्या इस रेस्टराँ की यही फरनिशिंग्स थीं ?"

थोड़ी देर तक श्याम ने कुछ नहीं कहा, सीता उसकी तरफ नहीं देख रही थी, फिर बोला, "सीता तुम अपना प्रायश्चित्त कब तक जारी रखोगी।"

एक क्षण को सीता ने आश्चर्य प्रदर्शन कर उत्तर दिया। पर फिर उसकी आखें श्याम पर लौट आईं। श्याम उनमें देखता ही रहा।

सीताने सर हिलाया, "तुमही तो हृदय की अराजकता की बात करते थे···खैर मैंने जान लिया है उससे भाग सकना भी मुश्किल नहीं है। आसान ही है। मन को छोड़ कर्त्तव्य भी निभाए जा सकते हैं। ऐसा त्याग भी कुछ नहीं करता।"

सीता कपों में काफी डालने लगी। "तुम क्या करते रहे ?"

"लड़ता रहा।"

सीता ने मुस्करा कर पूछा, "वाह अभी तो तुम डैडी-ममी को समझा रहे थे कि फ्रँट पर लड़ाई नहीं है।"

श्याम ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सीता ने फिर पूछा, "अच्छा यही बतलाओ लड़ाई का क्या नतीजा रहा।"

श्याम ने उत्तर दिया, "हारा !"

मुर्दाबाद

कार चाचाजी ने दिल्ली में खरीदवाई थी, ड्राइवर भी नैनीताल से आ गया था। चाचाजी का अनुरोध था कि जब वह नैनीताल आने ही वाला है तो कार के ही साथ आ जाय, कार के बारे में तसल्ली रहेगी।

तीसरे पहर रामपुर पहुँचे। उसने सूखा गला खँखारते कहा, "प्यास लगी है, जरा कहीं रोको।"

ड्राइवर नाटा, दुबला, बेशरम-सा था जिसके साहचर्य से रास्तेभर वह अपने-आपको सिकोड़ कर रखे था। ड्राइवर ने निर्द्वन्द रास्तेभर कैंची मार्का सिगरेट पी थी, बीच-बीच में सीटी भी बजाने लगता था। उसके ध्यान में आया था कि ड्राइवर महाशय सड़क की स्त्रियों का काफी ध्यान से अवलोकन करते थे।

"सा'ब बीयर-शैम्पेन का इन्तेजाम करेगा?"

वह चौंक गया, फिर अपने-आप पर पूर्ण अधिकार करके बोला—

"नहीं खाली पानी से काम चल जाएगा।"

ड्राइवर सीटी बजाता हुआ घूमा और लैमनेड वाले की दुकान की ओर चला गया।

कार के अन्दर गर्मी थी और चमड़े की गन्ध मिली घुटन भी पर वह अपने-आप से नाराज़ बैठा ही रहा। ड्राइवर के सामने प्रतिद्वन्दी बन जाने की हीनता उसमें कहाँ से आई? उमर में बढ़ता जा रहा हूँ पर जब जो सामने हुआ उसी के अनुसार अपने-आपको नापता हूँ।

ड्राइवर का लाया हुआ लेमनेड सिन्दूरी रंग का था और सेकरीन-सा मीठा। उसने प्रतिकार न कर वही गरल निगला।

रामपुर के आगे धूप बढ़ने लगी और उसका जकड़ा-सा मन कुछ निर्द्वन्द होने लगा। आखिरकार सफर कितना रोमाण्टिक है, दिल्ली से नैनीताल! उसने कई दफ़ा मन में दुहराया।

"आपके कमरे में आने के पहले आपके डैडी बतला रहे थे कि जितेन्द्र का विवाह किन्हीं इन्द्रानी सियाराम से तय हो गया।"

"पिछले साल भी क्या इस रेस्टराँ की यही फरनिशिंग्स थीं?"

थोड़ी देर तक श्याम ने कुछ नहीं कहा, सीता उसकी तरफ नहीं देख रही थी, फिर बोला, "सीता तुम अपना प्रायश्चित्त कब तक जारी रखोगी।"

एक क्षण को सीता ने आश्चर्य प्रदर्शन कर उत्तर दिया। पर फिर उसकी आखें श्याम पर लौट आईं। श्याम उनमें देखता ही रहा।

सीताने सर हिलाया, "तुमही तो हृदय की अराजकता की बात करते थे···खैर मैंने जान लिया है उससे भाग सकना भी मुश्किल नहीं है। आसान ही है। मन को छोड़ कर्त्तव्य भी निभाए जा सकते हैं। ऐसा त्याग भी कुछ नहीं करता।"

सीता कपों में काफी डालने लगी। "तुम क्या करते रहे?"

"लड़ता रहा।"

सीता ने मुस्करा कर पूछा, "वाह अभी तो तुम डैडी-ममी को समझा रहे थे कि फ्रँट पर लड़ाई नहीं है।"

श्याम ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सीता ने फिर पूछा, "अच्छा यही बतलाओ लड़ाई का क्या नतीजा रहा।"

श्याम ने उत्तर दिया, "हारा!"

मुर्दाबाद

कार चाचाजी ने दिल्ली में खरीदवाई थी, ड्राइवर भी नैनीताल से आ गया था। चाचाजी का अनुरोध था कि जब वह नैनीताल आने ही वाला है तो कार के ही साथ आ जाय, कार के बारे में तसल्ली रहेगी।

तीसरे पहर रामपुर पहुँचे। उसने सूखा गला खँखारते कहा, "प्यास लगी है, जरा कहीं रोको।"

ड्राइवर नाटा, दुबला, बेशरम-सा था जिसके साहचर्य से रास्तेभर वह अपने-आपको सिकोड़ कर रखे था। ड्राइवर ने निर्द्वन्द रास्तेभर कैंची मार्का सिगरेट पी थी, बीच-बीच में सीटी भी बजाने लगता था। उसके ध्यान में आया था कि ड्राइवर महाशय सड़क की स्त्रियों का काफी ध्यान से अवलोकन करते थे।

"सा'ब बीयर-शैम्पेन का इन्तेजाम करेगा?"

वह चौंक गया, फिर अपने-आप पर पूर्ण अधिकार करके बोला—

"नहीं खाली पानी से काम चल जाएगा।"

ड्राइवर सीटी बजाता हुआ घूमा और लैमनेड वाले की दुकान की ओर चला गया।

कार के अन्दर गर्मी थी और चमड़े की गन्ध मिली घुटन भी पर वह अपने-आप से नाराज़ बैठा ही रहा। ड्राइवर के सामने प्रतिद्वन्दी बन जाने की हीनता उसमें कहाँ से आई? उमर में बढ़ता जा रहा हूँ पर जब जो सामने हुआ उसी के अनुसार अपने-आपको नापता हूँ।

ड्राइवर का लाया हुआ लेमनेड सिन्दूरी रंग का था और सेकरीन-सा मीठा। उसने प्रतिकार न कर वही गरल निगला।

रामपुर के आगे धूप बढ़ने लगी और उसका जकड़ा-सा मन कुछ निर्द्वन्द होने लगा। आखिरकार सफर कितना रोमाण्टिक है, दिल्ली से नैनीताल! उसने कई दफ़ा मन में दुहराया।

ड्राइवर ने पूछा, "अब तो सा'ब मुर्दाबाद आएगा चाय नहीं लेंगे।"

"हाँ।"

उसके मन में आया कि ड्राइवर का उच्चारण सुधारे। ये फटीचर मशीनयुगी कितनी आसानी से राजकुमार मुराद की अवहेलना कर सकते हैं। फिर अपने से खुश वह खेतों को देखने लगा। सड़क के दोनों ओर घरों का झुंड—एक गाँव—झोंके से आता और चला जाता।

ड्राइवर ने कहा, "उधर कोई अच्छा जगह तो है नहीं—रेल्वे स्टेशन डाइनिंग-रूम चलेगा।"

उसने अपनी वाणी में मिठास घोलकर कहा, "नहीं। एक जान-पहचान के घर जाना है।"

वह अपने से मुदित हो गया। लक्ष्मी यदि बाहर निकलकर उसके स्वागत को आई तो शैम्पेन-बीयर का पूरा बदला मिल जायेगा।

पाँच साल पहले हरेन्द्र मामा लक्ष्मी को ब्याहकर दो दिन दिल्ली रुके थे। कुछ तो हरेन्द्र मामा की उमर तीस-बत्तीस थी और कुछ लक्ष्मी उसके सिर्फ कन्धों तक ही आती थी, इसलिए उसने सोलह वर्ष की लक्ष्मी को मामी न कहकर नाम से पुकारा था। इतनी तुतलाती बातें थीं उसकी कि हँसी आती थी। लगता था कि इस रूपवती गुड़िया का मनगढ़ंत में विश्वास अभी समाप्त नहीं हुआ है। लगता था कि लक्ष्मी अभी विवाह में कमल सी तैर रही है, रूठी नहीं है। वह हरेन्द्र मामा को किसी विशेष आत्मीयता से तरेर कर नहीं देखती थी। उसकी बातों से अन्दाजा होता था कि वह नये घर फोटोग्राफी सीखने, नई-नई भाषाएँ सीखने, नए-नए ढंग से घर सजाने ही जारही है।

हरेन्द्र मामा दाढ़ी पर हाथ मलते-कहते, "भई ये कहती हैं कि मैं शेव उलटा-सुलटा दोनों तरफ़ से न करूँ। चेहरा काला हो जायगा।"

हरेन्द्र मामा हँसते, लक्ष्मी ज़िद में दुहराती, "वह तो हो ही जाता है।"

उन दो दिनों के अतिरिक्त न तो पहले न बाद में उसने कभी लक्ष्मी को देखा था, फिर भी उसके मन में याद करने और याद दिलाने को लक्ष्मी की पूँजी काफी थी।

उसे सिर्फ लक्ष्मी के पति का नाम और सरकारी विभाग मालूम था; मोटर

से कई बार उतरना और बैक करना पड़ा। ड्राइवर को शंका थी कि कहीं हरेन्द्र मुर्दाबाद छोड़कर कहीं और चले गए हैं, जिसके विपरीत उसकी धारणा ही थी निश्चय ज्ञान नहीं।

दफ्तर में खस की टट्टी से अँधेरे कमरे में साहब ने बतलाया कि हरेन्द्र इज़ आउट ऑन टूअर।

"मुझे उनके घर का पता चाहिए, यदि आप किसी चपरासी को साथ करवा सकते ?"

साहब ने घंटी बजाकर बड़े बाबू को समस्या दे दी।

शहर से कुछ बाहर, पेड़हीन सपाट सड़क पर पुराने ढंग का काली खपरैल वाला मकान था। एक बाँस का टट्टर मकान के आगे बँधा था जिससे गाय वगैरह से बारह-बीस गेंदा के पेड़ों की रक्षा होती थी।

खटखटाने का उत्तर बन्द दरवाजे के पीछे से आया—"साहब बाहर हैं सोमवार को आएँगे।"

"दरवाजा तो खोलिये मुझे मिसेज़ हरेन्द्र से काम है।"

आवाज गुम हो गई। दस-पन्द्रह सैकिंड बाद उसने फिर जोर से भड़भड़ाया।

दो स्त्री आवाजों ने पूछा "कौन है ?"

"दरवाजा तो खोलिये, मैं दिल्ली से आया हूँ।"

दरवाजा खुलने पर उसने अपना नाम झिझकते हुए बतलाया और उन लोगों की तरफ पहिचाने जाने की नीयत से देखा।

जिस भरकम स्त्री ने किवाड़ खोला था उसने मुँह पर हाथ रखकर कहा "अरे ये तो चाचा जी का लड़का है।"

वह भी हरेन्द्र की बहन कुमुद को पहिचान गया था। उसने मुड़कर लक्ष्मी को ध्यान से देखा।

लक्ष्मी पहचानी जा सकती थी। देह जरा बेडोल हो गया था। और उसकी सुसज्जित स्मृति के विपरीत कुछ मैली और मामूली कॉटन की धोती पहने थी पर लक्ष्मी की आँखें पुराने ज़माने के ही तरह अकेन्द्रित सी थीं।

कुमुद ने पहिचाना क्या, सवाल पर सवाल करते उसे आड़े हाथों लेना शुरू

किया। कुमुद को दो लतें थीं—एक तो उच्चस्वर में स्पष्टवक्ता होने की और दूसरी हिन्दी उपन्यास व सिनेमा की। कुमुद में सदियों से विराट सत्य का इज़हार करते समय हीरोइन की नाटकीयता आ जाती थी।

"लक्ष्मी पहले इसे एक गिलास पानी पिलाओ, लू लगने का खतरा जाता रहेगा।"

"मैं तो चाय पीने की सोच रहा था।"

"नहीं, जाकर हाथ मुँह धो लो। फिर पूरी-आलू खाना।"

लक्ष्मी पूरी-आलू का आयोजन करने कमरे से निकल गई। वह कुमुद के निर्धारित प्रोग्राम पर चलने लगा। गुसलखाने में झुकी खपरैल की वजह से अँधेरा था और बत्ती नहीं थी। चारों तरफ़ लकड़ी की खूँटियों में गन्दे, आधे गन्दे, धुले, आधे धुले कपड़े ठसाठस टँगे थे जिनके कारण साँस फूलती थी।

कुमुद की गोद में एक बच्चा आ गया था।

"यह तुम्हारा लड़का है कुमुद?"

"नहीं रे मूर्ख! यह तो लक्ष्मी का मुन्ना है।"

कोई मैगज़ीन भी नहीं थी, फिर होती भी तो कुकर के सामने ठहरने की ताकत किसी देश-विदेश में छपी पत्रिका को शायद नहीं है।

"लक्ष्मी काफी बदली मालूम होती है। कम से कम मुझे, मैंने बहुत दिनों बाद देखा है।"

कुमुद ने मौके पर उछल कर कहा, "अब वह एक माँ है!"

उसने कहा, "मैं तो देख रहा हूँ। और वैसे शायद वह कोई खास बदली भी नहीं है।"

"वाह बदलेगी क्यों नहीं। औरत अपनी गिरस्ती में आकर फूलती ही है। वह ही तो उसका साम्राज्य है स्वर्ग है।"

उसने बात बदल कर पूछा, "हरेन्द्र मामा कैसे हैं, वो भी फूल रहे हैं?" कुमुद को अच्छा नहीं लगा। "अभी तीन महीने अस्पताल रहा बेचारा। किसी तरह के मलेरिया से बिलकुल निचुड़ गया है। पूर्वी जिलों में रहने का फल है उस पर। तभी से लक्ष्मी का साथ रखने मैं चली आई।"

कमरे की दीवारों पर इलस्ट्रेटेड वीकली से काटी तस्वीरें लगी थीं—जिनका

बरसों पुराना कागज़ पापड़ की तरह पीला और क्षीण हो गया था।

"इन्हें बदल क्यों नहीं देती हो ? इनका सब आकर्षण सूख चुका।"

"भाई लक्ष्मी के बराबर अन्यमनस्क स्त्री मैंने नहीं देखी। यह नहीं कि सब काम नहीं करती—पर सजावट में घर की या अपनी, उसका मन ही नहीं है। बस चलने दो। शउर की बात है। मैं तो कहती हूँ कि एक कमरे का मकान हो आनन्दवन बना कर रखा जा सकता है।"

"कुमुद कुछ लोगों को जरूरतों के आगे जाने का अवकाश नहीं होता।"

"खाक नहीं मिलता है। हमारे उनकी तनखा हरेन्द्र मामा से आधी होगी पर अगर मैं दीवालों पर नए-नए फिल्म फेयर की तसवीरें न बदलूँ तो वे ही मुझे कुछ हुआ समझेगें। सदा खोए-खोए बैठे रहने से हाँ नहीं हो सकता। हरेन्द्र कोई बात-बात कहने में गुणी नहीं था, फिर लक्ष्मी की सदा की हूँ हाँ चुप्पीं और मलेरिया ने उसे बिलकुल उदासीन कर दिया है।"

लक्ष्मीं ने उसके सामने लाकर चाय और पूरी-आलू रख दिये।

"तुम्हारे ड्राइवर को भी दे आऊँ ?"

लक्ष्मी ने दुबारा आकर कुमुद को कहा, "रंगरेजन आई है, बैठने को कह दूँ।"

"नहीं।" कुमुद चली गई।

"लक्ष्मी सच बतलाओ तुम्हें मेरी याद है ? पहिचान तो रही ही न।"

लक्ष्मी ने जिस साधारण स्वर में हाँ कहा उससे उसे कोई खास सन्तोष नहीं हुआ।

"कुमुद के अनुसार तुम खोई-खोई सी रहती हो। आखिर इस उमर में तुमने कौन सा उदासीन तत्त्व पा लिया है।"

लक्ष्मी प्रश्न पर ध्यान देने की बजाय उसका खाली गिलास लेकर चली गई। लौटने पर उसकी गोद में मुन्ना था।

"चाय और लाऊँ।"

"मैं चाय पींने नहीं लक्ष्मी तुमसे मिलने यहाँ आया था। तुमने बात करना तो दूर रहा, जवाब देना भी भुला दिया है।"

"खा पी लो।"

"सो तो कर ही लूँगा, फिर चला भी जाऊँगा ।"

लक्ष्मी पर उलाहने का कोई असर नहीं हुआ, उसे अपने पर शरम आई। मुन्ने के हाथ से पोरसीलेन की एशट्रे छुटा कर फिर छोड़ दिया।

वह अपने पर नियंत्रण नहीं रख सका। "लक्ष्मी तुम सुखी तो हो? मेरा मतलब सब ठीक है न?"

लक्ष्मी ने उसकी तरफ देखा पर वैसी ही विकेन्द्रित आँखों से।

"क्यों क्या हुआ?"

"मेरा मतलब तुम कुमुद की तरह नहीं दीखतीं। 'गिरस्ती में फूली हुई।"

लक्ष्मी ने मुन्ने के हाथ से फिर ऐशट्रे छुटाई।

"हाँ उन्हें कहानी और सिनेमा बहुत पसन्द है।" लक्ष्मी के स्वर में ऐसा कुछ नहीं था कि इस बात से कोई बहुत सारे अर्थ निकाले जाएँ।

कुमुद शायद रंगरेजिन से निपट कर आई थी।

"लक्ष्मी तुझे कुछ रंग करवाना है।"

"नहीं।"

"जैसी तेरी मर्जी—परदे धानी रंग के करवा लेती—कमरा बिलकुल सावन की तरह से खिल जाता।"

दरवाजे पर आये ड्राइवर ने ध्यान आकर्षित कर कहा, "सा'ब नाइट हाल्ट करेगा?"

उसने हड़बड़ा कर कहा, "नहीं तो।"

"अगर अभी चलेगा तो रात के बारह तक कहीं नैनीताल पहुँचेगा।"

"चलो।"

कुमुद को दिलासा दिलाया कि वह अमुक से जरूर यह बात और अमुक से जरूर वह बात कहेगा। लक्ष्मी से कहा जा रहा हूँ।

सड़क पर कार घुमाने के बाद ड्राइवर महाशय ने मिश्र को सुनाते हुए कहा, "बहुत गरम है साला मुर्दाबाद।"

वह पीछे की सीट पर चुप बैठा रहा।

INSTITUTE OF ADVANCED ... Acc. No. A6565 ... 5-2-74

एजरापाउंड के मत से कविता वाणी का संक्षिप्ततम रूप है जिसमें शास्त्रीय सीमाओं से परे अभिव्यक्ति का संगीत निखर उठता है। फलतः ऐसी कविता अभिधेय वस्तु और चेतना के अन्तराल में कम से कम आवरण उपस्थित करती है।

प्रस्तुत कविताओं में शब्दों ने परिमित और सरल रूप धारण कर भावों की तीव्रता के प्रकट होने में वैसे ही आवरण और अनावरण का छायातप रचा है जैसे कि कुछ प्राचीन प्रतिमाओं में 'भग्नांशुक' ने।

इन कविताओं को सुनकर ऐसी प्रत्यग्रता का अनुभव होता है जैसे कि अभी अभी बारिशके बाद

Library IIAS, Shimla
H 813.31 P 192 S
00046565

मूल्य-

अनुराग प्रकाशन • गोरखपुर